पाठ्यक्रम कोड
721-722

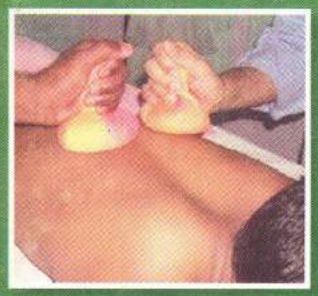

मुक्त व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम

आयुर्वेदीय चिकित्सा

में

प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम
(पंचकर्मा तकनीशियन हेतु)

1-2

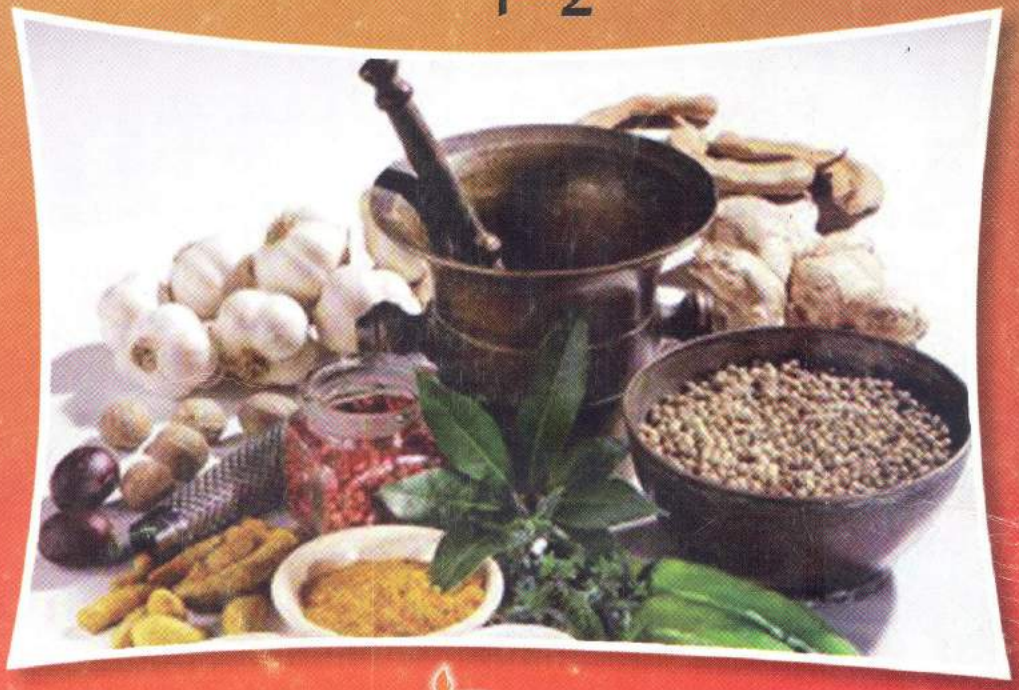

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
National Institute of Open Schooling

आयुर्वेदीय चिकित्सा
में
प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम
1

आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय
(पाठ्यक्रम कोड-721)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान
ए-24-25, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
एन.एच. 24, सैक्टर-62, नोएडा-201309 (उ.प्र.)

Printed on 60 GSM Paper with NIOS Watermark

© राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान

पुनःमुद्रित : जनवरी, 2014 (1,000 प्रतियाँ)

सचिव, राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, ए–24–25, इंस्टीट्यूशनल एरिया, सेक्टर–62, नोएडा–201309 द्वारा प्रकाशित एवं मैसर्स ए–वन ऑफसेट प्रिंटर्स, इंडस्ट्रियल एरिया, कीर्ति नगर, नई दिल्ली–110015 द्वारा मुद्रित।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम

आभारोक्ति

सलाहकार समिति

डॉ. सितांशु एस.जेना
अध्यक्ष
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ. के. पी. वासनिक
भूतपूर्व निदेशक (व्यावसायिक शिक्षा)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ. ममता श्रीवास्तव
उप निदेशक (व्या. शिक्षा)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

पाठ्यक्रम समिति

डॉ. सुनील जोशी
अपर चिकित्सा अधीक्षक
राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. अजय पांडेय
प्रवक्ता
चिकित्सा विज्ञान संस्थान,
बनारस हिन्दु विश्वविद्यालय, वाराणसी

श्री राम कुमार शर्मा
पतंजलि योग पीठ
हरिद्वार

श्रीमती अखिला घोष
सरसीजा, बी-35, गंगा वाटिका
मुनि की रेती, शिवनन्दा नगर- 249192

डॉ महावीर अग्रवाल
उपाध्यक्ष
उत्तराखंड संस्कृत अकादमी
हरिद्वार

डॉ. कल्पना शर्मा
रीडर
ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज,
हरिद्वार

डॉ गजराज सिंह त्यागी
महाप्रबंधक
गुरूकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार

डॉ ममता श्रीवास्तव
उप निदेशक (व्यावसायिक शिक्षा)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

डॉ विनय कुमार शर्मा
चिकित्सा अधिकारी
ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज
हरिद्वार

श्री अविक घोष
सरसीजा, बी-35
गंगा वाटिका, मुनि की रेती
शिवनन्दा नगर- 249192

डॉ अशोक पालीवाल
महाप्रबंधक
श्री जगदम्बा फार्मेसी, हरिद्वार

डॉ. पी.के. चौहान
कार्यकारी अधिकारी (एचपीएम)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

अनुवाद

डॉ इन्द्रजीत सिहं कुशवाहा
प्रवक्ता
ए एंड यू तीबिया कॉलेज, नई दिल्ली

लेखन-दल

डॉ. सुनील जोशी
अपर चिकित्सा अधीक्षक
राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज
गुरूकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

डॉ. कल्पना शर्मा,
रीडर
ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक कॉलेज, हरिद्वार

डॉ विनय कुमार शर्मा
चिकित्सा अधिकारी
ऋषिकुल राजकीय आयुर्वेदिक कालेज
हरिद्वार

डॉ. अजय पांडेय
प्रवक्ता
चिकित्सा विज्ञान संस्थान
बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

संपादन

डा. किशोरी लाल
मुख्य चिकित्सा अधिकारी (सेवानिवृत्त)
सीजीएचएस, आयुर्वेदिक अस्पताल
लोधी रोड, नई दिल्ली

श्री मनमोहन कठैत
व्यावसायिक संपादक, नई दिल्ली

डॉ. पुष्कर देव
चिकित्सा अधीक्षक (सेवानिवृत्त)
सीजीएचएस, आयुर्वेदिक अस्पताल
लोधी रोड, नई दिल्ली

डॉ. रजनी दुबे
आयुर्वेदिक चिकित्सक
जीवनी आयुर्वेदिक केन्द्र
नई दिल्ली

पाठ्यक्रम संयोजक

श्री वी. सतीश
शैक्षिक अधिकारी
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, नोएडा

ग्राफिक्स एवं कवर डिजाइन

शिवम ग्राफिक्स, नई दिल्ली

अध्यक्ष की कलम से

प्रिय विद्यार्थी,

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में आपका स्वागत है।

इस संस्थान में दाखिला लेकर आप विश्व की सबसे बड़ी मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली परिवार के सदस्य हो गए हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के व्यावसायिक कार्यक्रम के शिक्षार्थी के रूप में आप आनन्दपूर्वक अध्ययन करेंगे तथा इस अद्‌भुत विद्यालय एवं प्रशिक्षण विद्या से लाभान्वित होंगे।

इससे पहले कि आप अपने पाठ का अध्ययन आरंभ करें एवं अपना प्रशिक्षण शुरू करें, मैं आपके साथ दो बातें करना चाहता हूँ। यहाँ राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान में हम यह समझते हैं कि आप अन्य विद्यार्थियों से अलग हैं। हम यह भी समझते हैं कि आपका जीवन-अनुभव व्यापक है। आपको ऐसे व्यवसाय एवं हस्तकला, जो आपके पारिवारिक विरासत का एक हिस्सा है, उसके संबंध में भी पहले से अनुभव है। आपका व्यापारिक कौशल भी कुशाग्र है जो एक दिन आपको एक सफल व्यवसायी बनाने में मद्‌दगार साबित होगा और सबसे महत्वपूर्ण, आपमें वह प्रेरणा एवं कर्मशीलता है जिसने आपको इस संस्थान में दाखिला लेने के लिए प्रेरित किया है, जो स्वतंत्रता की भावना में विश्वास रखता है। हम यह जानते हैं कि आपके व्यक्तित्व में अनेक सकारात्मक पहलू हैं और इनका हम आदर करते हैं।

आपके अध्ययन की अवधि के दौरान राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान आपको अपने अध्ययन का प्रबंधन स्वयं करने की स्वतंत्रता प्रदान करता है। इसी कारण से आपकी पाठ्य सामग्री का निर्माण इस बात को ध्यान में रखकर किया गया है कि आपके समीप आपको पढ़ाने के लिए कोई शिक्षक नहीं है। आप ही अपने शिक्षक हैं। संभव है कि आपकी कुछ शंकाएं हो सकती हैं जिन्हें दूर करने के लिए हमने आपके अध्ययन केन्द्र में एक शिक्षक की व्यवस्था की है। मैं आपको यह सुझाव देता हूं कि आप अध्ययन-सामग्री की प्राप्ति, परीक्षा कार्यक्रम की जानकारी आदि के लिए अपने अध्ययन केन्द्र के संपर्क में रहें। आपको अध्ययन केन्द्रों की संपर्क कक्षाओं तथा प्रयोगात्मक प्रशिक्षण सत्रों में नियमित रूप से जाना चाहिए। यह आपको प्रत्यक्ष रूप से आवश्यक प्रशिक्षण देने एवं व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करने के लिए आवश्यक है।

व्यावसायिक पाठ्यक्रम का अध्ययन किसी अन्य शैक्षिक पाठ्यक्रमों के अध्ययन से भिन्न है। इसमें एक ओर जहाँ परीक्षा में प्राप्त अंक आपके विषय के संबंध में ज्ञान के सूचक होंगे, वहीं दूसरी तरफ आपकी वास्तविक उपलब्धि तभी होगी जब आप अपने व्यावसायिक कौशल का उपयोग बाजार में करेंगे। मैं आशा करता हूँ कि यह कौशल आधारित प्रशिक्षण आपको अपने कार्य को सुचारू रूप से संपादित करने में सहायक हो। राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा में एक प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम आरंभ किया गया है। यह पाठ्यक्रम विभिन्न आयुर्वेदिक उपचारों जैसे पंचकर्मा, अभ्यंग, मर्म आदि प्रदान करने के लिए बहु-सक्षमताएं एवं कौशल उपलब्ध कराएगा और आयुर्वेदिक अस्पतालों, पंचकर्मा केन्द्रों तथा आयुर्वेदिक कालेजों के लिए प्रशिक्षित और योग्य आयुर्वेदीय तकनीशियनों को तैयार करेगा। हमें आशा है कि यह पाठ्यक्रम आपके लिए उपयोगी होगा।

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान की ओर से मैं आपके उज्ज्वल एवं सफल भविष्य की कामना करता हूँ।

डॉ एस.एस.जेना
अध्यक्ष

आपके साथ कुछ बातें ...

प्रिय विद्यार्थियों,

आयुर्वेदिक चिकित्सा के मुक्त व्यावसायिक शिक्षण पाठ्यक्रम में आपका स्वागत है।

आयुर्वेद एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली है। अनेक सरकारी और निजी कॉलेज आयुर्वेद में पूर्वस्नातक कार्यक्रम उपलब्ध करा रहे हैं, किन्तु कोई भी संस्थान इस क्षेत्र में परा-चिकित्सा ज्ञान उपलब्ध नहीं करा रहा है। इसके परिणामस्वरूप देश में अस्पतालों, औषधालय और क्लीनिकों में अयोग्य व्यक्तियों की सेवाएं ली जा रही हैं। इसलिए आयुर्वेदिक फार्मेसियों, जड़ी-बूटी एकत्रण केन्द्रों, आयुर्वेदिक अस्पतालों, पंचकर्मा इकाइयों और अनेक उपवैद्यों की अत्यधिक मांग है।

आयुर्वेदिक तकनीशियनों की व्यापक मांग को देखते हुए रा.मु.वि.शि.सं द्वारा ''आयुर्वेदिक चिकित्सा'' नामक एक व्यावसायिक प्रमाणपत्र प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आरंभ किया गया है जो आयुर्वेद के क्षेत्र में व्यापक रूप से सहायक होगा और कुशल पराचिकित्सा विशेषज्ञों के निर्माण में मदद करेगा। इस पाठ्यक्रम की स्व:अनुदेशात्मक सामग्री में सैद्धांतिक और प्रायोगिक पक्ष के दो माड्यूल शामिल हैं।

1. आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय; और
2. आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय।

इस पाठ्यक्रम से विकसित ज्ञान और कौशल विद्यार्थी को आयुर्वेद की तकनीकों में अग्रिम प्रशिक्षण प्रदान करेगा। यह कार्यक्रम विद्यार्थी में बहु:क्षमताएं और कौशलों को विकसित करेगा ताकि वह विभिन्न प्रकार के आयुर्वेदिक चिकित्सा उपचार प्रदान कर सके जैसे पंचकर्मा, अभ्यंग, मर्म आदि।

स्व:अनुदेशात्मक सामग्री के निर्माण के दौरान विद्यार्थी सहिष्णु दृष्टिकोण को अपनाया गया है। प्रत्येक पाठ को साधारण भाषा और सुव्यवस्थित क्रम में तैयार किया गया है। पाठ के संबंध में विद्यार्थी के ज्ञान का विश्लेषण करने के लिए पाठ में पाठगत प्रश्नों को शामिल किया गया है। कक्षा के बाहर किए जाने के लिए सुझाई गई गतिविधियां भी उपलब्ध कराई गई हैं।

हमें आशा है कि यह पाठ्यक्रम आपके उज्ज्वल भविष्य को उपयुक्त राह प्रदान करेगा और आपके रोजगार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेगा।

वी. सतीश

शैक्षिक अधिकारी

आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम अध्ययनसूची

पाठ्यक्रम का नाम - आयुर्वेदीय चिकित्सा
पाठ्यक्रम का स्तर - प्रमाणपत्र

कार्यक्रम का परिचय

आयुर्वेद एक प्राचीन भारतीय चिकित्सा प्रणाली है। अनेक सरकारी और निजी कॉलेज आयुर्वेद में पूर्वस्नातक कार्यक्रम उपलब्ध करा रहे हैं, किन्तु कोई भी संस्थान इस क्षेत्र में परा-चिकित्सा ज्ञान उपलब्ध नहीं करा रहा है। इसके परिणामस्वरूप देश में अस्पतालों, औषधालय और क्लीनिकों में अयोग्य व्यक्तियों की सेवाएं ली जा रही हैं। इसलिए आयुर्वेदिक फार्मेसियों, जड़ी-बूटी एकत्रण केन्द्रों, आयुर्वेदिक अस्पतालों, पंचकर्मा इकाइयों में अनेक वैद्यों की अत्यधिक मांग है।

आयुर्वेदिक तकनीशियनों की व्यापक मांग को देखते हुए राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान द्वारा ''आयुर्वेदीय चिकित्सा'' नामक एक व्यावसायिक प्रमाणपत्र प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आरंभ किया गया है जो आयुर्वेद के क्षेत्र में व्यापक रूप से सहायक होगा और कुशल पराचिकित्सा विशेषज्ञों के निर्माण में मदद करेगा। इस पाठ्यक्रम की स्व:अनुदेशात्मक सामग्री में सैद्धांतिक और प्रायोगिक पक्ष के दो माड्यूल शामिल हैं:-

1. आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय, और
2. आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय।

इस पाठ्यक्रम से विकसित ज्ञान और कौशल, विद्यार्थी को आयुर्वेद की तकनीकों में अग्रिम प्रशिक्षण प्रदान करेगा। यह कार्यक्रम विद्यार्थी में बहु:क्षमताएं और कौशलों को विकसित करेगा ताकि वह विभिन्न प्रकार के आयुर्वेदिक चिकित्सा उपचार प्रदान कर सके, जैसे-पंचकर्मा, अभ्यंग, मर्म आदि।

पाठ्यक्रम का उद्देश्य और कार्यक्षेत्र

आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम में सिद्धांत और प्रयोग दोनों घटक शामिल हैं जिनका उद्देश्य ''प्रशिक्षित व योग्य आयुर्वेदिय तकनीशियन'' को तैयार करना है। यह पाठ्यक्रम योग्य अध्यापकों और अन्य अवसंरचनात्मक सुविधाओं वाले प्रशिक्षण केन्द्रों में किफायती मूल्य पर गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और प्रशिक्षण उपलब्ध कराएगा। यह पाठ्यक्रम दूरस्थ शिक्षण प्रणाली के माध्यम से रोजगारयुक्त आयुर्वेदिक तकनीशियनों की आवश्यकताओं को भी पूरा करेगा। इस पाठ्यक्रम से प्राप्त ज्ञान और कौशल से प्रशिक्षार्थी आयुर्वेदिक तकनीकों में उन्नत प्रशिक्षण प्राप्त कर पाएगा। इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद के विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकता को पूरा करने के लिए ''आयुर्वेदिक तकनीशियनों'' को प्रशिक्षत करना है।

यह भी आशा की जाती है कि इस पाठ्यक्रम का व्यावसायिक प्रशिक्षण विद्यार्थी में विभिन्न आयुर्वेदिक चिकित्साओं जैसे- पंचकर्मा अभ्यंग, मर्म आदि उपलब्ध कराने के लिए बहु:क्षमताएं और कौशल विकसित करेगा।

पात्रता मापदंड

आयुर्वेद चिकित्सा पाठ्यक्रम में वे लोग प्रवेश प्राप्त कर सकते हैं जो निम्नलिखित मानदंडों को पूरा करते हैं:

- विज्ञान के विषयों के साथ स्कूल शिक्षा के किसी बोर्ड से 12वीं कक्षा पास।

या

इस क्षेत्र में पहले से कार्यरत विद्यार्थियों की स्थिति में विज्ञान के विषयों के साथ स्कूल शिक्षा के किसी बोर्ड से 10वीं कक्षा पास।

- न्यूनतम आयु 18 वर्ष या अधिक।

लक्ष्य समूह

- व्यक्ति जो तकनीशियन के रूप में कार्यरत हैं किन्तु अहर्ता प्राप्त नहीं हैं।
- वरिष्ठ माध्यमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात इस क्षेत्र में रोजगार प्राप्त करने के इच्छुक युवा वर्ग।
- आयुर्वेदिक कॉलेजों में पूर्वस्नातक का विकल्प चयन करने वाले विद्यार्थी।

रोजगार के अवसर

इस पाठ्यक्रम का मुख्य उद्देश्य आयुर्वेद के विभिन्न क्षेत्रों की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आयुर्वेदिक तकनीशियनों को प्रशिक्षित करना है। इस पाठ्यक्रम को उत्तीर्ण करने के पश्चात, प्रशिक्षुओं को आयुर्वेदिक तकनीशियन या आर्युर्वेदिक फार्मेसीज, जड़ी-बूटी एकत्रण केन्द्रों, आयुर्वेदिक अस्पतालों, पंचकर्मा इकाइयों में और स्वतंत्र वैद्य के रूप में रोजगार के अवसर प्राप्त होंगे।

पाठ्यक्रम की अवधि: एक वर्ष

इस पाठ्यक्रम की अवधि एक वर्ष है। तथापि, व्यक्ति समय-समय पर राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के प्रचलित नियमों के अनुसार किसी बाहरी परीक्षा के माध्यम से पंजीकरण के वर्ष से पांच वर्षों की अवधि में इस पाठ्यक्रम को पूरा कर सकता है।

प्रशिक्षुओं का संयोजन (attachment): इंटर्नशिप के लिए प्रशिक्षुओं का न्यूनतम 06 माह के लिए संयोजन किया जाएगा।

अध्ययन की योजना:

	सिद्धांत	प्रायोगिक प्रशिक्षण	कुल अनिवार्य संपर्क घंटे
अनिवार्य संपर्क घंटे	120 घंटे	180 घंटे	300 घंटे

पाठ्यचर्या और पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम पाठ्यचर्या में दो माड्यूल हैं जिसमें सिद्धांत और प्रयोगिक दोनों पक्ष शामिल हैं। नीचे दर्शाये गये सैद्धान्तिक पक्ष को स्व:अध्ययन सामग्री के रूप में उपलब्ध कराया गया है। प्रायोगिक भाग/प्रशिक्षण प्रत्येक विद्यार्थी को अध्ययन केन्द्र (एवीआई) में उपलब्ध कराया जाएगा।

विषय/पेपर-1	विषय/पेपर-2
माड्यूल -1 आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय (कोड -721) • भाग-I : आयुर्वेद परिचय • भाग-II : शरीर रचना और शरीर क्रिया • भाग-III : विकृति विज्ञान और रोग निदान	माड्यूल -2 आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय (कोड -722) • आयुर्वेद में विभिन्न चिकित्साओं का परिचय • पंचकर्मा - सिद्धांत एवं अनुप्रयोग पक्ष, पंचकर्मा में प्रयोग होने वाली तैयारियां। • आयुर्वेद के माध्यम से परिवार कल्याण • मर्म

अनुदेश का माध्यम

अनुदेश का माध्यम अंग्रेजी और हिंदी है।

अनुदेशात्मक प्रणाली

- स्व:अनुदेशात्मक मुद्रित सामग्री।
- श्रवण एवं दृश्य समर्थित प्रणाली
- दिया गया कार्य
- एवीआई/अध्ययन केन्द्रों में आमने-सामने की काउंसलिंग
- एवीआई/अध्ययन केन्द्रों में प्रयोगात्मक/प्रशिक्षण सुविधा
- जहां कहीं लागू/अपेक्षित हो, कार्य के दौरान प्रशिक्षण।

मूल्यांकन प्रमाणन की योजना

सिद्धांत और प्रयोगात्मक पक्ष, दोनों भागों का मूल्यांकन पृथक रूप से किया जाएगा। अंतिम परिणामों के परिकलन के दौरान आंतरिक प्रयोगात्मक पक्षों को भी ध्यान में रखा जाएगा। आकलन, मूल्यांकन तथा प्रमाणपत्र की योजना का क्रियान्वयन रा.मु.वि.शि.सं. द्वारा निर्धारित दिशानिर्देशों के माध्यम से किया जाएगा। रा.मु.वि.शि.सं. अपने नियमों और विनियमों के आधार पर अंतिम प्रमाणपत्र प्रदान करेगा।

योजना:

क्र सं	विषय/ पेपर	सिद्धांत		प्रयोगात्मक/प्रशिक्षण		एसाइनमेंट के अंक	कुल
		अधिकतम अंक	घण्टे	अधिकतम अंक	घण्टे	अधिकतम अंक	
01	माड्यूल-1 आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय(721)	80	3	100	3	20	200
02	माड्यूल-2 आयुर्वेद की विभिन्न चिकित्सा प्रणालियों का परिचय (722)	80	3	100	3	20	200
	सकल योग						**400**

(ख) संकाय और सहायक स्टाफ

क्र.सं	संकाय और सहायक स्टाफ	शैक्षिक/व्यावसायिक अहर्ता	संख्या
1.	संयोजक	स्नातक	01
2.	अनुदेशक (बी.ए.एम.एस. डॉक्टर)	बी.ए.एम.एस.	01
3.	तकनीकी सहायक	आयुर्वेदिक चिकित्सा/पंचकर्मा में प्रमाणपत्र/डिप्लोमा या 12वीं पास तथा आयुर्वेदिक/पंचकर्मा थेरेपी में कम से कम 2 सालों का अनुभव	02
4.	स्वागत अधिकारी-सह-लिपिक	कार्य के अनुरूप संगत अनुभव	01

बैच का आकार – एक बैच में अधिकतम 25 विद्यार्थी।

प्रमाणन के लिए आवेदन फॉर्म और विवरण के लिए निम्नलिखित पते पर संपर्क करें:

निदेशक (व्यावसायिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षण संस्थान,
ए-24/25, सेक्टर-62, इंस्टीट्यूशनल एरिया,
नोएडा (उत्तर प्रदेश)।
दूरभाष 0120-4089818 फैक्स- 4089819
वैबसाइट : www.nios.ac.in

उत्तीर्णता अंक: सफलतापूर्वक उत्तीर्ण होने के लिए विद्यार्थी को सिद्धांत पक्ष में 40% अंक तथा प्रायोगिक प्रशिक्षण में 50% अंक प्राप्त करने होंगे।

पाठ्यक्रम शुल्क

विद्यार्थी पूर्ण पाठ्यक्रम के लिए 10,000 रूपए का भुगतान करेगा और मुद्रित सामग्री का एक सेट प्राप्त करेगा। इसके अतिरिक्त, परीक्षा शुल्क का भुगतान राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान के नियमों के अनुसार अलग से किया जाएगा।

प्रवेश प्रक्रिया

प्रवेश की प्रक्रिया राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान द्वारा अधिसूचित तिथियों के अनुसार वर्ष में दो बार की जाएगी। आवेदन फार्म तथा विवरणिका राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान से या इसके अध्ययन केन्द्रों (एवीआई) से खरीदी जा सकती है।

पाठ्यक्रम के संचालन के लिए कार्यविधि

निम्नलिखित अवसंरचना वाले संस्थान प्रमाणन के लिए आवेदन कर सकते हैं।

(क) आधारभूत अवसंरचना

1. **कक्षा:** 25 विद्यार्थियों के बैठने के लिए कक्षा (न्यूनतम क्षेत्र 225 वर्ग फुट) जिसमें एक ब्लैक बोर्ड/व्हाइट बोर्ड, पर्याप्त फर्नीचर, एग्जास्ट और सीलिंग फैन आदि सहित उचित संवातन और पर्याप्त प्रकाश व्यवस्था होनी चाहिए।

2. **ओपीडी सुविधा:** संस्थान में ओपीडी (डॉक्टर का कक्ष, औषधालय और चिकित्सा कक्ष) होने चाहिए।

3. **चिकित्सा और उपकरण कक्ष:** पुरूषों और महिलाओं के लिए पृथक उपचार कक्ष होने चाहिए जिनमें फिसलन-रोधी फर्श, रोगी के लिए टेबल (7 फुट × 3 फुट × 2 फुट), एग्जास्ट और सीलिंग फैन सहित उचित संवातन और पर्याप्त प्रकाश व्यवस्था होनी चाहिए। चिकित्सा कक्ष में स्वेदन, नाड़ी स्वेदन यंत्र, चिकित्सीय आयुर्वेदिक औषधियां जैसे- दशमूल क्वाथ, दशमूल तेल, महानारायण तेल और पंचगुण तेल आदि के लिए बक्सा भी होना चाहिए या उपकरणों के लिए पृथक कक्ष की व्यवस्था भी की जा सकती है।

4. **पुस्तकालय:** पुस्तकालय में विषय से संबंधित कम से कम 10 पुस्तकें/लेख/पत्रिकाएं आदि होनी चाहिए।

आयुर्वेदीय चिकित्सा में प्रमाणपत्र पाठ्यक्रम

आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धान्तों का परिचय

मॉड्यूल-1

अनुक्रमणिका

क्र. सं.	अध्याय का नाम	पृष्ठ संख्या
1,	आयुर्वेद परिचय	01
2.	आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त एवं उसका प्रयोग पक्ष	08
3.	स्वास्थ्य एवं स्वस्थवृत्त के साथ रोगों की रोकथाम के उपाय	26
4.	गर्भावक्रांति (गर्भव्याकरण)	34
5.	प्रकृति (प्राकृतिक संगठन)	43
6.	शरीर के सह–अंग (प्रत्यंग)	49
7.	पेशी–अस्थि तंत्र, अस्थि (Bones), सन्धि (Joints), स्नायु (Ligaments), पेशी (Muscles)	56
8.	मर्म विज्ञान	66
9.	रोगों के निदान	75
10.	रोग प्रक्रिया और सम्प्राप्ति के प्रकार	86
11.	रोग एवं रोगी की परीक्षा	91

सफलता की गाथाएँ

काव्या माधवन
नामांकन संख्या : 090008103065

काव्या माधवन मलयालम फिल्म जगत की एक अत्यंत सम्मानित अभिनेत्री है। एक बाल कलाकार के रूप में अपनी पहली फिल्म करने वाली काव्या ने मलयालियों के हृदयों में जल्द ही एक जगह बना ली। फिर भी उन्हें इस सब के लिए माध्यमिक स्तर पर स्कूल छोड़ना पड़ा। अन्य बहुत से लोगों की तरह, उन्होंने भी कॉलेज डिग्री प्राप्त करने का स्वप्न देखा था। काव्या को राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान (एनआईओएस) में दाखिला लेने की प्रेरणा मिली और वे मलयालम माध्यम में उच्चतर माध्यमिक स्तर की परीक्षा के लिए बैठी और सफल हुई। वे कहती हैं कि यह सफलता उन्हें आसानी से प्राप्त नहीं हुई।

मुक्त विद्यालयी शिक्षा प्रणाली को आभार कि काव्या माधवन अब एम.जी. विश्वविद्यालय, कोट्टायम, केरल से बी.कॉम में पंजीकृत है।

गणेश
नामांकन संख्या : माध्यमिक पाठ्यक्रम : 25001292005
उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम : 250012103570

गणेश ने एनआईओएस का माध्यमिक पाठ्यक्रम प्रथम श्रेणी से उत्तीर्ण किया और अब उसने उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम के चार विषयों की परीक्षा दी है। गणेश अन्य शिक्षार्थियों से अलग है क्योंकि उसे हड्डी के संक्रमण का गंभीर अल्सर है। इस रोग का कोई उपचार नहीं है, उसकी कमर से नीचे का भाग सही ढंग से विकसित नहीं हो पाया है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाने के लिए उसे उठाकर ले जाना पड़ता है।

यद्यपि उसके परिवार के सदस्यों और प्रमुख अक्षमता आयुक्त की सहायता से उसने एक निजी अभ्यर्थी के रूप में सर्व शिक्षा अभियान के एक शिक्षार्थी के रूप में अपना नामांकन कराया। इस स्थिति में एनआईओएस ने उसे अपनी गति से पढ़ने और क्रेडिट संचयन की सुविधा देकर सहायता की। वह अपनी पसंद के विषय भी पढ़ सकता था और उसे अपने घर से ही परीक्षा देने की अनुमति भी दी गई। केन्द्र शासित प्रदेश चंडीगढ़ ने उसे अनुशिक्षकों की सुविधा प्रदान कराई, जो उसे गणित और विज्ञान पढ़ाते हैं।

धर्म में अत्यधिक रुचि के कारण,उसने विभिन्न पुराण, रामायण पढ़े हैं जिनसे उसे अत्यधिक आंतरिक बल प्राप्त हुआ है।

गणेश आगे पढ़ाई के लिए दृढ़ निश्चयी है और एनआईओएस अपना उच्चतर माध्यमिक पाठ्यक्रम करने के बाद कम्प्यूटर साईंस में एक पाठ्यक्रम करना चाहता है।

1

आयुर्वेद परिचय

आयुर्वेद विश्व की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है जो मनुष्य के जीवन के बारे में अध्ययन कराती है। 'आयुर्वेद' दो शब्दों से मिलकर बना है आयु और वेद, जिसका अर्थ है आयु का ज्ञान। शरीर, इन्द्रियाँ, मन और आत्मा के संयोग को आयु कहते हैं। इस अध्याय में हम आयुर्वेद विज्ञान, आयुर्वेद के इतिहास के बारे में जानेंगे। हम वर्तमान समय के संदर्भ में आयुर्वेद की तुलना चिकित्सा की अन्य पद्धतियों से भी करेंगे।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे –

- आयुर्वेद का इतिहास;
- आयुर्वेद की व्याख्या;
- आयुर्वेद की व्याख्या एवं उसका ज्ञान (अष्टांग आयुर्वेद);
- वर्तमान समय में अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तुलना में आयुर्वेद के गुणों को जान पाएंगे।

1.1 आयुर्वेद का इतिहास

प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति होने के कारण इसको किसी एक सीमा के अन्दर नहीं बांधं सकते हैं। आयुर्वेद के अनुसार ब्रह्मा आयुर्वेद के प्रथम उपदेष्टा थे। इस आयुर्वेद का ज्ञान ब्रह्मा से दक्षप्रजापति, दक्षप्रजापति से अश्विनी कुमारों और अश्विनी कुमारों से इन्द्र को प्राप्त हुआ।

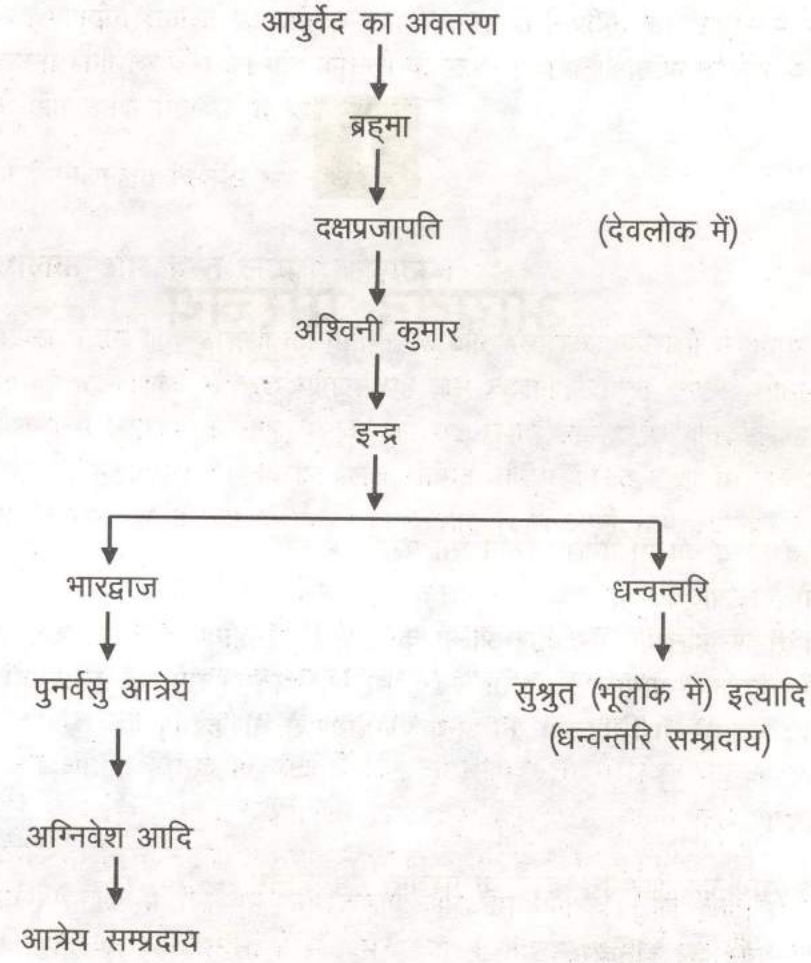

पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य

अग्निवेश, भेल, जतुकर्ण, पाराशर, हारीत एवं क्षारपाणी, पुनर्वसु आत्रेय के शिष्य थे। आत्रेय द्वारा बतलाए गये सिद्धान्त एवं उनके प्रयोगात्मक विषय आत्रेय सम्प्रदाय के नाम से विख्यात हुए। सभी शिष्यों में अग्निवेश कायचिकित्सा में सर्वाधिक बुद्धिमान थे जिन्होंने अपने गुरु पुनर्वसु आत्रेय के सिद्धान्तों को अपने अग्निवेश तन्त्र में शामिल किया। इसके बाद, आचार्य चरक ने अग्निवेश तन्त्र का प्रतिसंस्कार एवं विस्तार किया जो चरक संहिता के नाम से जाना जाता है।

चित्र 1.1 : श्री धन्वन्तरि

धन्वन्तरि के शिष्य -

औपधेनव, वैतरण, औरभ्र, पौषकलावत, करवीर्य, गोपुररक्षित, सुश्रुत इत्यादि भगवान धन्वन्तरि के शिष्य थे। धन्वन्तरि द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त एवं

प्रयोग धन्वन्तरि सम्प्रदाय के नाम से जाने जाते हैं। शल्य विज्ञान में सभी शिष्यों में सुश्रुत सर्वाधिक बुद्विमान थे जिन्होंने सुश्रुत संहिता की रचना की थी।

1.2 आयुर्वेद की कुछ महत्वपूर्ण रचनाएं

आयुर्वेद की कुछ महत्वपूर्ण संहिताएं हैं चरक संहिता, काश्यप संहिता, हारीत संहिता, सुश्रुत संहिता, अष्टांग ह्रदय, अष्टांग संग्रह इत्यादि। आयुर्वेद की संहिताओं में कुछ संहिताएं महत्वपूर्ण हैं जिनका आयुर्वेद के सभी विद्वान अध्ययन एवं चिकित्सा में प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद की इन संहिताओं को दो भागों में बांट सकते है:–

(i) वृहद्त्रयी।

(ii) लघुत्रयी।

- वृहद्त्रयी के अंतर्गत तीन संहिताएं आती हैं।

संहिता	रचनाकार
चरक संहिता (काय–चिकित्सा प्रधान)	चरक
सुश्रुत संहिता (शल्य चिकित्सा प्रधान)	सुश्रुत
अष्टांग ह्रदय	वाग्भट

- लघुत्रयी के अन्तर्गत तीन संहिताएं

संहिता	रचनाकार
माधव निदान	माधवकर
भावप्रकाश	भावप्रकाश
शारंगधर संहिता	शारंगधर

पाठगत प्रश्न 1.1

1. रिक्त स्थान भरें –

   (i) आयुर्वेद ..... का उपवेद है।

   (ii) अष्टांगह्रदय के संग्रहकर्ता (रचनाकार) ..... हैं।

   (iii) सुश्रुत संहिता ..... की पुस्तक है।

   (iv) लघुत्रयी के अंतर्गत ....., ... और ..... संहितायें हैं।

1.3 आयुर्वेद की परिभाषा

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि आयुर्वेद दो शब्दों से मिलकर बना है प्रथम आयु और दूसरा वेद, जिसका अर्थ है 'जीवन का ज्ञान'। शरीर, इंद्रिय, सत्व (मन) और आत्मा इनके संयोग को आयु कहते हैं और इस शास्त्र को आयुर्वेद शास्त्र कहते हैं।

1.4 आयुर्वेद का प्रयोजन

आयुर्वेद के दो मुख्य प्रयोजन हैं:

1. स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना।
2. रोगी को सामान्य अवस्था में लाने के लिए रोगों की चिकित्सा करना।

पाठगत प्रश्न 1.2

1. रिक्त स्थान भरें:

   (i) आयु ..... का संयोग है।

   (ii) रोगी व्यक्ति के रोग की चिकित्सा आयुर्वेद का ..... है।

1.5 स्वास्थ्य की परिभाषा

किसी व्यक्ति के दोष अग्नि, धातु एवं मल का सम अवस्था में होना तथा आत्मा, मन और इन्द्रियों का प्रसन्न होना 'स्वास्थ्य' कहलाता है तथा ऐसा व्यक्ति पूर्ण स्वस्थ होता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) के अनुसार –

स्वास्थ्य व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक और सामाजिक संतुलन की पूर्ण अवस्था है ना कि निरोग होने की।

1.6 आयुर्वेद का उद्देश्य तथा विषयवस्तु

आयुर्वेद का मुख्य उद्देश्य स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा और रोगी के रोग की चिकित्सा करना है।

इस संसार में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति तभी हो सकती है जब व्यक्ति स्वस्थ हो, जो कि स्वस्थ शरीर से ही सम्भव है। आयुर्वेद में लोगों की अभिरुचि रही है और यह प्रत्येक व्यक्ति और समाज से जुड़ा है। आयुर्वेद मनुष्य और राष्ट्र दोनों के विकास के लिए जरूरी है। हम लोग आयुर्वेद से विभिन्न रूपों से जुड़े हुए हैं या ऐसा कह सकते हैं कि निम्न क्षेत्र आयुर्वेद से ही उत्पन्न होते हैं:–

1. चिकित्सा।
2. आयुर्वेदीय शिक्षक (आयुर्वेद शिक्षा का क्षेत्र);
3. परिचारक (सहायक जो चिकित्सा में सहायता करे, जैसे फार्मासिस्ट, नर्सिंग स्टाफ, अटेन्डेन्ट इत्यादि);
4. औषधीय पौधों का उत्पादन;
5. द्रव्यों का संग्रह एवं संरक्षण;
6. ओषधियों का निर्माण;
7. अनिर्मित द्रव्य और निर्मित द्रव्यों का विपणन।

1.7 आयुर्वेद - (अष्टांग आयुर्वेद)

आयुर्वेद की आठ शाखाएं हैं, जिनका वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत है;

1. शल्य तन्त्र –

आयुर्वेद के जिस अंग में अनेक प्रकार के तृण, काष्ठ, पत्थर, धूलि के कण, लौह, मिट्टी, हड्डी, केश, नाखून, पूय, स्राव, दूषित कण, अन्तःशल्य तथा मृतगर्भ शल्य आदि को मनुष्य शरीर से निकालने का ज्ञान उपलब्ध है तथा इसमें यन्त्र, शस्त्र, क्षार एवं अग्निकर्म आदि का प्रयोग किया जाता है, उसे शल्य तन्त्र कहते हैं।

2. शालाक्य तन्त्र –

आयुर्वेद के जिस अंग में उर्ध्वजत्रुगत अंगों जैसे – कान, आँख, मुख, नाक एवं सिर के रोगों और उनकी चिकित्सा का अध्ययन किया जाता है, उसे शालाक्य तन्त्र कहते हैं।

3. काय चिकित्सा –

शरीर के सभी भागों को प्रभावित करने वाले रोगों जैसे ज्वर, रक्तपित्त, शोष, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, प्रमेह, अतिसार आदि और उनके प्रबंधन से संबंधित आयुर्वेद की शाखा को काय चिकित्सा कहते हैं।

4. भूतविद्या

आयुर्वेद के जिस अंग में देव, दैत्य, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, पितृ, पिशाच, नाग आदि ग्रहों से पीड़ित चित्त वाले रोगियों की शांति के लिए शान्तिपाठ, बलिप्रदान, हवन आदि गृह दोष नाशक क्रियाओं का वर्णन किया गया हो उसे भूतविद्या कहते हैं।

5. कौमारभृत्य –

आयुर्वेद के जिस अंग में बालकों के पोषण, मातृदुग्ध के दोषों के संशोधन उपाय तथा दूषित दुग्धपान और ग्रहों से उत्पन्न व्याधियों की चिकित्सा का वर्णन हो उसे कौमारभृत्य कहा

गया है।

6. अगदतन्त्र –

आयुर्वेद के जिस अंग में सर्प, कीट, लूता (मकड़ी) चूहा आदि के काटने से शरीर में उत्पन्न विष लक्षणों को पहचानने के लक्षण तथा अनेक प्रकार के स्वाभाविक, कृत्रिम और विभिन्न विषों से उत्पन्न विकारों के प्रशमन का वर्णन हो, उसे अगदतन्त्र कहते हैं।

7. रसायन तन्त्र –

आयुर्वेद के जिस अंग में युवावस्था को अधिक समय तक बनाये रखने के उपाय, आयुधारणा शक्ति और बल की वृद्धि करने के उपाय एवं शरीर की स्वाभाविक रोग प्रतिरोधक क्षमता की वृद्धि के तरीकों का वर्णन हो, उसे रसायन तन्त्र कहते हैं।

8. वाजीकरण तन्त्र –

आयुर्वेद के जिस अंग में अल्प, दुष्ट, क्षीण और शुष्क वीर्य वाले मनुष्यों के वीर्य की पुष्टि, शोधन, वृद्धि और उत्पत्ति तथा स्वस्थ लोगों में मैथुन के समय हर्ष बढ़ाने के लिए वर्णन किया जाता है, उसे वाजीकरण तन्त्र कहते हैं।

1.8 वर्तमान समय में प्रासंगिकता और अन्य चिकित्सा पद्धतियों से श्रेष्ठता

आयुर्वेद एक प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति है जो आज के वर्तमान समय में भी अपने दृढ़ सिद्धान्तों और मानव जाति पर सकारात्मक प्रभाव के कारण इसकी श्रेष्ठता को दर्शाती है। आयुर्वेद में मुख्य रूप से प्राकृतिक वस्तुओं के द्वारा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा की जाती है जिसके कारण लोग आयुर्वेद में विश्वास रखते हैं।

'चरक संहिता' के अनुसार जो व्यक्ति प्रकृति के जितना समीप रहता है वह रोगों से उतना ही दूर रहता है। इस वर्तमान समय में बदलती जीवन शैली और खानपान की आदतें, विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक रोगों का कारण बनती जा रही हैं। स्वस्थ जीवन प्राप्त करने के लिए यह जरूरी है कि हम अपने को प्रकृति के नियमों के अनुरूप विकसित करें। प्रातः जल्दी जागना और सम्पूर्ण नींद लेना अच्छे स्वास्थ्य के लिए जरूरी है। प्राकृतिक भोजन और मात्रावत जल का सेवन व्यक्ति को स्वस्थ बनाते हैं। यह शरीर ब्रह्माण्ड की देन है इसलिए जो भी परिवर्तन ब्रह्माण्ड में होते हैं वे शरीर को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार मनुष्य की शारीरिक क्रियायें, मानसिक संतुलन, इच्छायें और उनका बोलना शरीर को प्रभावित करते हैं।

तनाव मुक्त जीवन हमारी शारीरिक एवं मानसिक शक्ति को बढ़ाता है जिससे हमारे शरीर की रोगप्रतिरोधक क्षमता बढ़ती है। आहारों का वर्णन और एक मनुष्य का स्वयं और समाज के स्तर पर अच्छा आचरण एवं अच्छा व्यवहार उसके स्वास्थ्य की श्रेष्ठता को दर्शाता है। स्वास्थ्य का इस प्रकार का वर्णन अन्य किसी चिकित्सा जगत में नहीं मिलता है।

भारतीय चिकित्सा पद्धति अर्थात आयुर्वेद के द्वारा आज भी भारतीय समाज के एक बड़े वर्ग और विश्व की जनसंख्या को चिकित्सा लाभ मिल रहा है। वर्तमान समय में पश्चिमी चिकित्सा के क्षेत्र मे सम्पूर्णता आ चुकी है। आधुनिक औषधियों का दुष्प्रभाव एवं महंगे होते परीक्षण आज अपने चरम पर हैं। वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता विश्व को एक वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति देने के लिए प्रतिबद्ध हैं, आयुर्वेद उस मानक को पूरा करता है। सामान्य विकारों के लिए आयुर्वेदिक औषधियाँ आज सम्पूर्ण विश्व में प्रचलित हो रही हैं। विश्व की सभी प्राचीन सभ्यताओं की पादप और अन्य तकनीकों पर आधारित अपनी चिकित्सा पद्धति विद्यमान हैं। आयुर्वेद के साथ–साथ औषधीय चिकित्सा का प्रयोग दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है जिसका कारण इसकी कार्मुकता एवं इससे लाभ के प्रति लोगों की जागरूकता है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने आयुर्वेद के इतिहास की महत्वपूर्ण संहिताओं, आयुर्वेद की परिभाषा एवं उद्देश्य, स्वास्थ्य की परिभाषा, आयुर्वेद का प्रयोजन एवं आयुर्वेद का अंग विभाजन (अष्टांग आयुर्वेद) और वर्तमान समय में अन्य चिकित्सा पद्धतियों से आयुर्वेद की उत्कृष्टता का अध्ययन किया।

ऊपर वर्णित सभी विषयों का अध्ययन विद्यार्थियों को आयुर्वेद को समझने में सहायक होगा।

पाठांत प्रश्न

1. आयुर्वेद के कितने भाग हैं? संक्षिप्त वर्णन कीजिए।
2. आयुर्वेद में वर्णित एवं विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) द्वारा दी गई परिभाषा का वर्णन करें।
3. अष्टांग आयुर्वेद का संक्षिप्त वर्णन एवं प्रत्येक शाखा का सविस्तार वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों का उत्तर

1.1

1. अथर्ववेद
2. आचार्य वाग्भट
3. शल्य
4. माधव निदान – शारंगधर संहिता, भावप्रकाश संहिता

1.2

1. शरीर, इन्द्रियां, मन, आत्मा
2. उद्देश्य

2

आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त एवं उसका प्रयोग पक्ष

पिछले अध्याय में हमनें आयुर्वेद के इतिहास, उसके उद्देश्य और प्रयोजन के विषय में अध्ययन किया। इस अध्याय में हम आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्तों के बारे में विचार करेंगे।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे–

(1) आयुर्वेद के मौलिक सिद्धान्त;

(2) पंचमहाभूतों का अपने अवयवों से निर्माण कैसे होता है;

(3) स्वस्थ एवं रोग अवस्था में शरीर के अन्दर त्रिदोष, सप्तधातु एवं मलों की स्थिति;

(4) स्वास्थ्य को बनाए रखने में आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य की भूमिका;

(5) रोगों की उत्पत्ति एवं अनुत्पत्ति में हेतु, लिंग एवं औषध के महत्व को जानना एवं उनको परिभाषित करना;

(6) रस, गुण, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव के आधार पर द्रव्यों की क्रियाविधि का वर्णन।

2.1 आयुर्वेद का मौलिक सिद्धान्त:-

आयुर्वेद के पाँच मौलिक सिद्धांत हैं–

1. पांचभौतिक सिद्धान्त और पंचमहाभूत सिद्धान्त (ब्रह्माण्ड के पाँच आधारभूत द्रव्य)।
2. त्रिदोष, सप्तधातु एवं मलों का सिद्धान्त।

3. व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य की महत्ता।
4. दुर्बल व्यक्ति को वापस सामान्य अवस्था में लाने हेतु, लिंग एवं औषध का उचित प्रयोग।
5. द्रव्य, गुण, रस, विपाक, वीर्य एवं प्रभाव। द्रव्य एवं उनकी क्रियाविधि एवं प्रभाव।

1. पंचमहाभूत का सिद्धान्त –

संसार की सभी सजीव एवं निर्जीव वस्तुएं पाँच आधारभूत द्रव्यों से मिलकर बनी हैं इनको पंचभौतिक कहते हैं। पंचमहाभूत चेतना के लिए एक भौतिक स्थान प्रदान करते हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी पांच महाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, एवं गन्ध क्रमशः इनके विषय हैं।

पंचमहाभूतों का निर्माण –

अव्यक्त अवस्था में सत्व, रज, तम, गुण साम्यावस्था में रहते हैं। जब पुरूष का अव्यक्त से संयोग होता है तो यह साम्यावस्था विचलित होती है और ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति की प्रक्रिया आरम्भ होती है। प्रकृति (मूलप्रकृति/अव्यक्त) से महत की उत्पत्ति होती है जो अव्यक्त के समान गुण वाला होता है। महत से अहंकार की उत्पत्ति होती है जो महत के समान गुण वाला होता है। यह अहंकार तीन प्रकार का होता है–वैकारिक, तेजस और भूतादि। वैकारिक अहंकार और तेजस अहंकार की सहायता से एकादश इन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। कर्ण, त्वक्, चक्षु, जिह्वा (रसना), घ्राण (नासा) ये पांच ज्ञानेन्द्रियां, हस्त, पाद, जिह्वा (वाक्), गुदा, उपस्थ ये पांच कर्मेंद्रियां, एवं ग्यारहवां मन और इस प्रकार ये कुल एकादश इन्द्रियाँ हैं।

भूतादि और तेजस अहंकार के संयोग से पंचतन्मात्रों की उत्पत्ति होती है। ये पाँच तन्मात्राएं हैं– शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध इनके विशिष्ट गुण हैं। इन तन्मात्राओं से पंचभूत (महाभूत) की उत्पत्ति होती है। ये आकाश (space), वायु (air), अग्नि (fire), जल (water), और पृथ्वी (earth) पंचमहाभूत है।

इन पंचमहाभूतों में से प्रथम महाभूत में सिर्फ एक गुण होता है और अगले महाभूत में एक और गुण जुड़ जाता है। इस प्रकार पहले का महाभूत और उसका गुण बाद के महाभूत के साथ जुड़ा होता है। घनत्व, जलत्व, उष्णत्व, चलत्व और शून्यता क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के विशिष्ट लक्षण हैं। इन सभी लक्षणों की अनुभूति ज्ञानेन्द्रियों द्वारा की जा सकती है।

पाठगत प्रश्न 2.1

रिक्त स्थान भरें:

1. पंचमहाभूत ..... हैं।
2. पृथ्वी और जल महाभूत का लक्षण क्रमशः ..... है।

2. त्रिदोष, सप्तधातु एवं मल का सिद्धान्त

दोष, धातु और मल शरीर के मूल हैं। जिस प्रकार किसी वृक्ष की उत्पत्ति, उसका विकास, रख–रखाव और उसका विनाश उस वृक्ष के मूल (Root) पर निर्भर होता है उसी प्रकार दोष धातु और मल शरीर के मूल अवयव हैं।

दोष –

दोष दो प्रकार के होते हैं:–

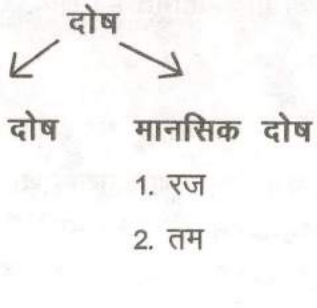

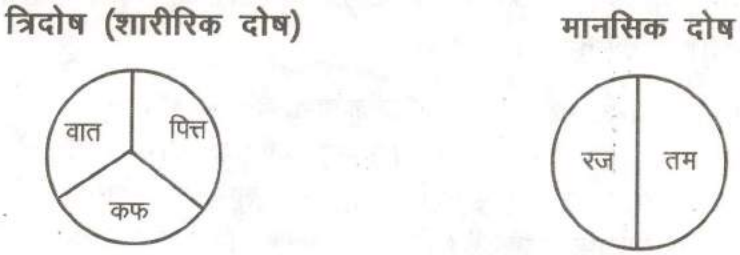

चित्र 2.1

साम्यावस्था में जब दोष सम रहते हैं तो शरीर स्वस्थ रहता है तब ये धातु कहलाते हैं। प्रकुपित दोष, धातु और मल शरीर में रोगों को उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होते हैं। रोगों की उत्पत्ति में सिर्फ धातु और मल प्रत्यक्ष रूप से कारण नहीं होते हैं।

इस ब्रह्माण्ड का संचालन सूर्य, चन्द्रमा और वायु के आदान (बलह्रास), विसर्ग (बलवृद्धि) और विक्षेप क्रियाओं के कारण होता है। इसी प्रकार से पित्त, कफ और वायु अपनी–अपनी क्रियाविधि से शरीर का संचालन करते हैं।

दोषों का स्थान -

शरीर के सभी भागों में दोष विद्यमान होते हैं। लेकिन इनके कुछ विशिष्ट स्थान भी हैं।

कफ – उर्ध्वभाग – शरीर का ऊपरी भाग, हृदय के ऊपर।

पित्त – मध्यभाग – शरीर का मध्य भाग, हृदय और नाभि के बीच।

वात – अधोभाग – नाभि के नीचे का भाग।

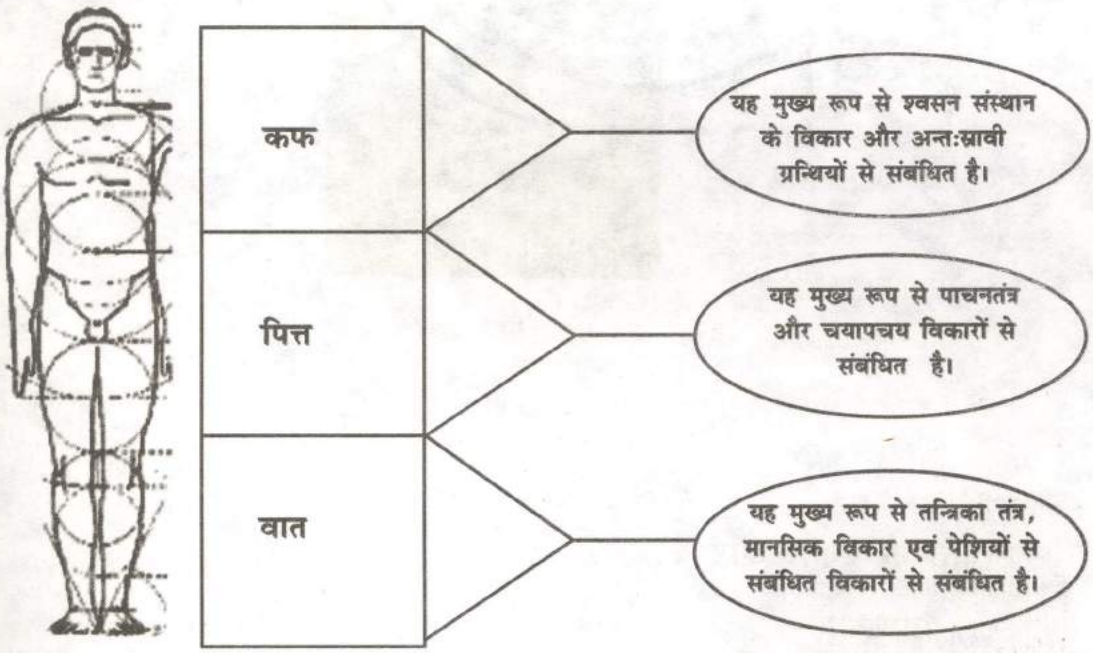

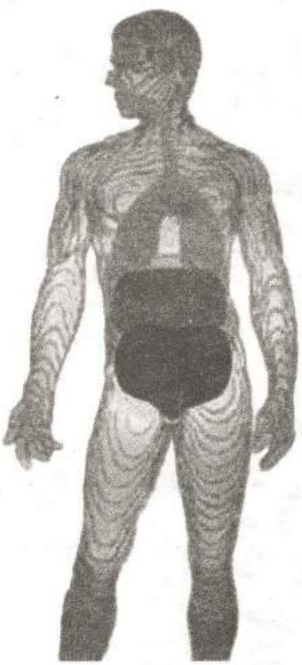

दोष

कफ

नासागुहा

नासाछिद्र

गला

श्वास नली की शाखा

पित्त

यकृत

प्लीहा

पित्ताशय

आमाशय

छोटी आंत का प्रथम भाग (ग्रहणी)

अग्न्याशय

वात

क्षुद्रान्त्र

वृहदान्त्र

चित्र: 2.2: शरीर में त्रिदोषों का स्थान और उनसे संबंधित विकार

वात दोष

वात के गुण – रूक्ष, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर ये वात के गुण हैं और इनका शमन विरोधी गुण के द्रव्यों से होता है।

चित्र 2.3

वात के प्रकार और कार्य –

1. **प्राणवायु–**

   स्थान–मुख, गला, जिह्वा, नासा, उर प्रदेश।

   कार्य – अन्न को शरीर के अन्दर आमाशय, ग्रहणी आदि स्थानों में पहुंचाती है। श्वास, प्रश्वास इत्यादि क्रियायें करती है।

2. **उदान वायु–**

   स्थान–नाभि, गला, उर प्रदेश।

   कार्य – वाचन, गायन, साहस।

3. **समान वायु–**

   स्थान – आमाशय, छोटी आंत का प्रथम भाग (ग्रहणी)।

   कार्य – अग्नि को बल प्रदान करना, अन्नपाक से उत्पन्न विशेष पदार्थों (आहार रस, मूत्र और मलों,) को पृथक् करना।

4. **व्यानवायु–**

   स्थान – सर्वशरीर।

   कार्य – रस, रक्त एवं स्वेद का संवहन करती है तथा गति, अवक्षेपण, उत्क्षेपण, निमेष, उन्मेष आदि कार्यों का संचालन करती है।

5. **अपान वायु** –

स्थान – वृहदान्त्र, गुदा, मलाशय, वृषण और शिश्न।

कार्य– मल, मूत्र, शुक्र, गर्भ तथा आर्तव को अधोमार्ग की ओर प्रेरित करके निकालती है।

पित्तदोष –

पित्त के गुण – ईषत् स्नेहयुक्त, गरम, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, तिक्त और कटु गुणयुक्त होता है।

चित्र 2.4

पित्त के प्रकार और कार्य –

1. **पाचकपित्तः–**

स्थान – छोटी आंत का प्रथम भाग (ग्रहणी)।

कार्य – अन्न का पाचन।

2. **रंजक पित्त** –

स्थान – यकृत एवं प्लीहा।

कार्य – रक्त का निर्माण।

3. **साधकपित्त–**

स्थान –हृदय।

कार्य – भय, साहस एवं क्रोध।

4. **आलोचक पित्त** –

स्थान – नेत्र।

कार्य – दर्शन।

5. **भ्राजक पित्त –**

स्थान – त्वक् (त्वचा)।

कार्य – त्वचा का वर्ण, स्वेद और तैलीयग्रन्थि की क्रिया।

कफ दोष-

कफ के गुणों में गुरू, शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर और पिच्छिल गुण शामिल हैं।

चित्र 2.5

कफ के प्रकार एवं कार्य–

1. **क्लेदक कफ–**

स्थान – आमाशय।

कार्य– आमाशय में अन्न का क्लेदन और पाचन।

2. **अवलम्बक कफ–**

स्थान – उरः प्रदेश।

कार्य – कटिप्रदेश, हृदय और उर का धारण एवं पूर्ण अवलम्बक कफ का कार्य है।

3. **बोधक कफ –**

स्थान – जिह्वामूल।

कार्य – स्वाद।

4. **तर्पक कफ –**

स्थान – शिर के साथ मस्तिष्क।

कार्य – मस्तिष्क का पोषण और सभी ज्ञानेन्द्रियों के कार्यों का संचालन।

5. **श्लेषक कफ –**

स्थान – सन्धियाँ।

कार्य – सन्धियों के कार्यों का संचालन।

धातु

शरीर में सात धातु होते हैं यथा – रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र। ये धातु शरीर की कोशिकाओं का पोषण और उनकी देखभाल करते हैं।

रस	—	Essence of digested food
रक्त	—	Blood
मांस	—	Flash/Muscle
मेद	—	Fat
अस्थि (हड्डियां)	—	Bones
मज्जा	—	Bone marrow
शुक्र	—	Essence of reproductive energy

ये शरीर को धारण करती हैं, इसलिए इन्हें धातु कहते हैं।

धातुओं का पोषण -

आहार में लिया गया अन्न और पेय (liquid) सभी धातुओं को पोषक तत्वों की आपूर्ति करता है। आहार रस में सभी पोषकतत्व होते हैं जो हमारे शरीर के सभी धातुओं के लिए आवश्यक होते हैं। प्रत्येक धातु शरीर में संवहन होने वाले आहाररस से अपने विशिष्ट पोषक तत्वों को ग्रहण कर लेता है। ये पोषक तत्व फिर धात्वाग्नि द्वारा चय–अपचय क्रिया के माध्यम से परिवर्तित होते हैं और उस धातु के लिए लाभकारी होते हैं। रस धातु से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र का निर्माण होता है।

आहार नलिका में उपस्थित स्राव में पाये जाने वाले किण्वतत्व से आहार का पाचन होता है।

आहार पाचन के पश्चात, पक्व आहार दो भागों में विभाजित होता है।

1. आहार रस
2. आहार मल

इस प्रकार धातुओं का निर्माण अग्रिम क्रम में होता है, पूर्व धातु के सूक्ष्म भाग से उत्तरधातु का पोषण होता है। इस तरह, रसधातु रक्तधातु का पोषण करता है। रक्त से मांस, मांस से मेद, मेद से अस्थि, अस्थि से मज्जा और मज्जा से शुक्र का पोषण होता है।

धातु परिणाम काल - (धातुपोषण काल)

यह रस प्रत्येक धातु में 3015 कला की अवधि के लिए विद्यमान रहता है, इस प्रकार रस एक माह की अवधि में पुरूष में शुक्र और स्त्री में आर्तव के रूप में परिवर्तित होता है। (कुल 1890 कलाओं का समय लगता है।)

रस धातु – आहार चार प्रकार के होते हैं– पेय (drinking), लेह्य (licking), भोज्य (chewable), भक्ष्य (eatable) और स्वाद छः प्रकार के होते हैं– मधुर (sweet) अम्ल (sour), लवण (salt), कटु (Pungent), तिक्त (bitter), और कषाय (astrigent) तथा वीर्य दो प्रकार के (active principle) होते हैं उष्ण और शीतल। पाचन के बाद यह आहार दो भागों – आहार रस (सारभाग) और आहार मल (किट्ट भाग) में विभाजित हो जाता है। रसाग्नि आहार रस पर क्रिया करके स्थूलभाग और सूक्ष्मभाग का निर्माण करती है। स्थूलभाग रसधातु का पोषण करती है। सूक्ष्मभाग से आर्त्तव, स्तन्य और रक्त धातु एवं श्वसन का पोषण होता है। यह रस अवशोषित होकर स्त्रोतों के माध्यम से ह्रदय में पहुँचता है। हृदय से यह रस उर्ध्व, अधः एवं तिर्यक दिशाओं में भ्रमण करते हुए शरीरस्थ समस्त धातुओं का पोषण करता है। जिससे शरीर की वृद्धि और पोषण होता है। शरीर में रसधातु की मात्रा 9 अंजलि है (अंजलि–दोनों खुली हथेली को मिलाने पर जो मात्रा होती है।)

रक्तधातु –

रन्जकपित्त द्वारा रस धातु से रक्तधातु की उत्पत्ति होती है।

शुद्धरक्त का लक्षण –

रक्तधातु इन्द्रगोप (चमकीला लाल रंग का कीट) के समान वर्ण वाला होता है। रक्त शरीर को वर्ण, मास का पोषण तथा शरीर की प्रमुख क्रियाओं का अनुरक्षण करता है। रक्त शरीर का आधार है, शरीर शुद्ध रक्त के द्वारा पोषित होता है। रक्त स्वयं जीवन का आधार है इसलिए इसकी सभी प्रकार से रक्षा करनी चाहिए। शरीर में रक्त की मात्रा अष्ट अंजलि है। शरीर में रक्त की मात्रा शरीर के भार के 5% तक होती है। रक्त का 45% कोशिकीय भाग में होता है एवं 55% अकोशिकीय भाग में होता है।

मांसधातु –

मांसधातु से मेदधातु का पोषण होता है। मांस और अस्थियों से शरीर के आकार का निर्धारण होता है। यह शरीर के भार का 41% होता है तथा यह 5% जल और 21% प्रोटीन से बना होता है। शरीर की सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धियाँ पेशियों से ढकी होती हैं और इनको मजबूती प्रदान करती हैं। पेशियाँ अपना कार्य आकुंचन और प्रसारण द्वारा करती हैं।

मेदधातु –

मेदधातु का पोषण मांस धातु से होता है। मेद के द्वारा शरीर के विभिन्न देहावयवों में स्निग्धता, स्वेदोत्पत्ति, स्थिरता और अस्थियों का पोषण होता है।

अस्थिधातु -

अस्थियाँ शरीर के स्वरूप एवं आकार को बनाये रखने में सहायक हैं और मज्जा का पोषण करती हैं। शरीर अस्थियों के सहारे स्थिर रहता है।

मज्जाधातु -

मज्जाधातु का पोषण अस्थिधातु से होता है। मज्जा शरीर की दीर्घ अस्थियों के भीतर स्थित होती है। मज्जा से शरीर की स्निग्धता, बल, अस्थियों का पूरण और शुक्र धातु का पोषण होता है।

शुक्रधातु –

जिस प्रकार इक्षु के प्रत्येक भाग में उसका रस, दूध–दही में घृत तथा तिल में तैल व्याप्त रहता है उसी प्रकार शरीर के प्रत्येक भाग में शुक्र विद्यमान रहता है। यह शरीर में बाल्यावस्था से ही रहता है। यह सर्वशरीर व्यापी शुक्र कामभावना से स्पर्श होने पर या शब्द, स्पर्श, रूप दर्शन इत्यादि से स्त्री संभोग के समय स्रवित होता है।

शुक्र का कार्य हैं – धैर्य, आकर्षक व्यक्तित्व, स्नेह तथा शारीरिक एवं मानसिक बल, स्त्री संभोग के समय आनन्द तथा पुष्ट एवं क्रियाशील शुक्राणु या डिम्ब प्रदान करना, जो निषेचित होकर एक भ्रूण का निर्माण कर सके।

ओज –

रस से शुक तक के सभी धातुओं का सारभाग ओज है, जो शरीर का बल है। यह सभी धातुओं में विद्यमान रहता है। जैसे दुग्ध में घृत विद्यमान रहता है। ओज का स्थान मुख्यतः ह्रदय है, लेकिन यह सम्पूर्ण शरीर में उपस्थित रहता है।

ओज का स्वरूप – ओज घृत वर्ण का रक्तपीत, मधुर, लाजगंधि, गुरु, शीत, स्निग्ध, द्रव होता है जो शरीर में जीवन पर्यन्त विद्यमान रहता है और शरीर कोशिकाओं को दीर्घायु बनाता है। यह स्निग्ध, घन, पिच्छिल ओज जीवन का आधार है।

उपधातु –

उपधातुएं सात होती हैं। स्तन्य (Breast milk) एवं आर्तव–रस की उपधातु है। सिरा और स्नायु–रक्त की उपधातु है। वसा और त्वक–मांस की उपधातु है और पेशी–मेद की उपधातु है।

मल –

उत्सर्जित पदार्थ आहार द्रव्यों के पाचन क्रिया के फलस्वरूप निर्मित होते हैं। इसलिए पाचन क्रिया के दौरान जो अवयव, सार तत्व और मल निर्मित होते हैं, वे एक दूसरे का सहयोग कर आपसी सामजस्य से शरीर को बनाये रखने में सहायक होते हैं। मल शरीर को दूषित करते हैं इसलिए इनको दूष्य भी कहते हैं। समय–समय पर ये शरीर से बाहर निष्कासित होते रहते हैं।

पुरीष एवं मूत्र अन्न के मल हैं। रस धातु का मल कफ होता है एवं रक्त धातु का मल पित्त होता है। कान, नाक, मुख आदि छिद्र स्थानों के मलों की उत्पत्ति मांस से होती है। अतः मांस धातु के मल कान, नाक मुख आदि छिद्रों के मल हैं। मेद धातु का मल स्वेद है, अस्थि धातु का मल नख एवं रोम है, नेत्रों से निकलने वाले मल तथा त्वचा का स्नेहांश – मज्जा धातु का मल है।

स्वेद का कार्य

स्वेद का कार्य त्वचा की आर्द्रता एवं स्निग्धता बनाये रखना है।

स्वेद का क्षय होने पर रोमकूपों का अवरोध, त्वचा की शुष्कता, स्पर्श विकार और स्वेद का अभाव हो जाता है। स्वेद की वृद्धि होने पर अतिस्वेद, दुर्गन्धित त्वचा एवं कण्डु आदि होते हैं।

3. त्रय उपस्तम्भ – (आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य)

आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य शरीर के तीन उपस्तम्भ हैं। मनुष्य द्वारा इन तीनों उपस्तम्भों के युक्तिपूर्ण प्रयोग से शरीर स्थिर रहता है। इनका उचित प्रयोग करने से शरीर में बल, वर्ण एवं शरीर का संपूर्ण विकास होता है और इससे आयुर्वेद के उद्देश्यों की पूर्ति होती है, यथा–स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का रक्षण। आयुर्वेद के उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य के साथ प्रकृति, दिनचर्या, ऋतुचर्या, आयु, स्थान और आहार विधि विशेषायतन का पालन करके किया जा सकता है।

स्वास्थ्य के निर्धारक कारकों में अनुवांशिक और वातावरणीय कारक, जीवनशैली, सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण सेवाएं तथा अन्य कारक जैसे – आहार उपयोग, कृषि, औद्योगिक और शहरी विकास इत्यादि भी शामिल हैं।

आहार –

द्रव्य दो प्रकार के होते हैं–

1. आहार द्रव्य।
2. औषध द्रव्य।

आहार द्रव्य रस प्रधान होते हैं और ये द्रव्य रस द्वारा क्रिया करते हैं।

मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय (मीठा, खट्टा, नमकीन, चरपरा, कड़वा, कसैला) ये छह रस हैं तथा औषध द्रव्य वीर्य प्रधान होते हैं और ये द्रव्य वीर्य–शीत एवं उष्ण के द्वारा कार्य सम्पादित करते हैं।

द्रव्य पंचभौतिक होते हैं। ये पाँच आधारभूत द्रव्यों से बने होते हैं और इनमें क्रमशः आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी महाभूत की प्रधानता या किसी दो या अधिक महाभूतों की भी

प्रधानता हो सकती है। इसलिए पंचभौतिक आधार पर द्रव्यों के गुण एवं उनका रस जानना आवश्यक है।

रसों का महाभूत एवं दोषों से सम्बन्ध

रस	प्रधान महाभूत	दोषों पर प्रभाव	
		शमन	प्रकोप
मधुर	जल, पृथ्वी	वात, पित्त	कफ
अम्ल	पृथ्वी, अग्नि	वात	पित, कफ
लवण	जल, अग्नि	वात	पित्त, कफ
कटु	वायु, अग्नि	कफ	पित्त, वात
तिक्त	वायु, आकाश	पित्त, कफ	वात
कषाय	वायु, पृथ्वी	पित्त, कफ	वात

समरस आहार हितकर आहार या समआहार या युक्ताहार है।

अच्छे स्वास्थ्य के लिए समसर्वरस की सलाह दी जाती है और यह स्वास्थ्य के लिए अनिवार्य उपाय भी है। सर्वरसों का एक साथ दीर्घ अवधि तक सेवन शरीर के बल को बढ़ाता है। और एक रस वाले द्रव्यों का दीर्घ काल तक सेवन शरीर बल को घटाता है।

आहार द्रव्यों का वर्गीकरण -

आचार्य चरक ने आहार द्रव्यों को बारह वर्गों में विभाजित किया है। ये वर्ग हैं:

1. शूकधान्य वर्ग (Class of corns गेहूँ)
2. शमी धान्यवर्ग (Class of pulses दालें)
3. मांसवर्ग (Class of meats)
4. शाकवर्ग (Vegetable)
5. फलवर्ग (Fruits)
6. हरितवर्ग (Green Vegetables)
7. मद्यवर्ग (Alcoholic drinks)
8. जलवर्ग (Class of water)
9. दुग्ध वर्ग (Class of milks and its product)
10. इक्षुवर्ग (Sugar cane and its products)
11. कृतान्न वर्ग (Dietary preparation)
12. आहार योगी वर्ग (Adjuvants of foods)

अन्नपान विधि का सिद्धान्त - (आहार विधि विशेषायतन)

आहार विधि विधान उन स्वस्थ व्यक्ति और कतिपय परिस्थितियों में रोगी के लिए भी लाभकारी है, जो समय पर पौष्टिक आहार लेते हैं। व्यक्ति को उष्ण, स्निग्ध, मात्रापूर्वक, भोजन के पच जाने पर, वीर्य के अविरुद्ध, अपने मन के अनुकूल स्थान पर, अनुकुल सामग्रियों के सहित, आहार को न अधिक जल्दी, न अधिक देर से, न बोलते हुए, न हँसते हुए अपनी आत्मा का विचार कर आहार द्रव्य में मन लगाकर तथा यह आहार द्रव्य मेरे लिए हितकर या अहितकर है, ऐसा विचार कर भोजन करना चाहिए।

आहार को प्रभावित करने वाले आठ विशिष्ट कारक हैं –

1. प्रकृति
2. करण
3. संयोग
4. राशि
5. देश
6. काल
7. उपयोग संस्था
8. उपयोक्ता

निद्रा -

स्वस्थ जीवन के तीन स्तम्भों में से एक निद्रा भी है। जब कार्य करते–करते मन थक जाता है एवं इन्द्रियाँ भी थकने के कारण अपने विषयों से निवृत्त हो जाती हैं तब व्यक्ति को निद्रा आती है। हृदय चेतना का स्थान है जब हृदय पर तमोगुण की प्रधानता हो तो निद्रा आती है। सत्वगुण की प्रधानता के कारण नींद कम आती है। निद्रा प्राकृतिक रूप से आती है।

अच्छी नींद आने से शरीर में आरोग्य, शरीर का पोषण, बल की वृद्धि, शुक्र की वृद्धि, ज्ञानेन्द्रियों की उचित रूप में प्रवृत्ति, और आयु नियत रूप से यथाकाल तक बनी रहती है। निद्रा के न आने पर शरीर में रोग, कृशता, बल की हानि, नपुंसकता, ज्ञानेन्द्रियों का अपने विषयों में उचित रूप से प्रवृत्त न होना और निद्रा के न आने से अनेक प्रकार के भयंकर रोग होने से मृत्यु की संभावना हो जाती है।

दिवाशयन का निर्देश - (दिवाशयन करने के योग्य पुरुष)

ऐसे व्यक्ति जिन्हें दिन में शयन करने का अभ्यास हो गया हो, जो व्यक्ति गीत, अध्ययन, मदिरापान, मैथुन, संशोधन कर्म, भार ढोना और रास्ता चलना आदि कर्म से क्षीण हो गए हों, अजीर्ण के रोगी, उरःक्षत के रोगी और जिनका शरीर धातुक्षय से क्षीण हो गया हो, वृद्ध, बालक और स्त्री तथा प्यास, अतिसार एवं शूल रोग से पीड़ित, दमा के रोगी, हिक्का (हिचकी) रोगी, कृश व्यक्ति, ऊंचे स्थान से गिरे हुए व्यक्ति, रात्रि जागरण से थके व्यक्ति, क्रोध, शोक, भय से पीड़ित व्यक्ति, सभी स्थितियों में दिन में शयन कर सकते हैं। ग्रीष्म ऋतु में आदान काल के कारण रुक्ष शरीर वाले मनुष्यों के शरीर में वायु के बढ़ जाने से तथा रात्रि के अत्यन्त छोटे होने के कारण दिन में शयन करना उत्तम होता है। ग्रीष्म के अतिरिक्त अन्य ऋतुओं में दिन में शयन नहीं करना चाहिए।

दिवाशयन के हानिकारक प्रभाव

शिरःशूल, (सिर दर्द), स्तैमित्य (गीले कपड़े से शरीर के ढके होने की अनुभूति), शरीर का भारीपन, अग्निमांद्य, हृदय पर कुछ लेप कर दिया गया है इस तरह भारीपन का प्रतीत होना, शोथ, भोजन में अरुचि, पीनस, आधे सिर में वेदना, शरीर में चकत्ते, स्मरण शक्ति एवं बुद्धि का नाश, स्रोतों में रुकावट, ज्वर, ज्ञानेन्द्रियों एवं कर्मेन्द्रियों में अपने–अपने विषयों को ग्रहण करने में असमर्थता इत्यादि। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर के लिए हितकर आहार जरूरी है उसी प्रकार से निद्रा भी जरूरी है।

ब्रह्मचर्य –

जीवन में स्वस्थ रहने के लिए जो मार्ग अपनाये जाते हैं उनमें उत्कृष्ट मार्ग ब्रह्मचर्य है। स्वस्थ जीवन के संदर्भ में ब्रह्मचर्य का तात्पर्य शुक्र रक्षा से है, जैसा कि मनुष्य में शुक्र और स्त्री में स्राव रूप में प्रजोत्पादन शक्ति इनकी रक्षा करना चाहिए। अनावश्यक शुक्र का नाश नहीं करना चाहिए। शुक्र की रक्षा के लिए आठ प्रकार के मैथुन बतलाए गए हैं। –

अष्ट मैथुनः

स्मरण (Memory)

कीर्तन (Conversation regarding)

केलि (Use of sex related signals)

प्रेक्षण (To look again and again)

गुह्य भाषण (Use of such words having sexual interpretation)

संकल्प (Determination of sex)

अध्यावसाय

क्रियानिवृत्ति (Completion of act)

अत्यधिक शुक्र का नाश होने पर शूल, कास, ज्वर, श्वास, दौर्बल्य, क्षय, भ्रम इत्यादि होता है। अगर कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण रखता है और ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए गृहस्थाश्रम में जीवन व्यतीत करता है तो संयमित मैथुन और शुक्र धारण से दीर्घजीवन को प्राप्त करता है तथा शरीर, बल और वर्ण से परिपूर्ण होता है।

4. हेतु-लिंग-औषध त्रिसूत्र (कारण-लक्षण-उपचार)

(Etiology, Symptom Therapeutics)

रोगों की चिकित्सा के लिए हेतु, लिंग और औषध का सही उपयोग जरूरी है।

हेतु – रोगों के उत्पत्ति का मुख्य कारण हेतु है। काल, बुद्धि एवं इन्द्रियार्थ का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग शारीरिक एवं मानसिक रोगों का कारण हैं।

काल – (परिणाम) –

ये तीन प्रकार के होते है – सर्दी, गर्मी और बरसात।

अगर काल के अतिमात्रा में विशिष्ट लक्षण मिलते है तो उसे अतियोग कहते है जैसे – ग्रीष्म ऋतु में अधिक गर्मी पड़ने से तालाब का सूखना और पेड़ से पत्तों का गिरना, इसके विपरीत लक्षणों में कमी होना अयोग कहलाता है, जैसे – सर्दी में ठण्ड का न होना या कम ठण्ड होना। सर्दी में कभी ठण्ड अधिक पड़ना, कभी कम पड़ना, कभी नहीं पड़ना और कभी ठण्ड पड़ने लगना, इस प्रकार काल का स्वरूप मिथ्यायोग कहलाता है।

बुद्धि

शरीर, मन और वचन का सम्मिलित प्रयोग प्रज्ञा है। शरीर, मन और वचन का अत्यधिक प्रयोग अतियोग कहलाता है तथा शरीर, मन और वचन का कम प्रयोग या प्रयोग न करना अयोग कहलाता है।

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग-

ज्ञानेन्द्रियों का अतियोग, अयोग और मिथ्यायोग असात्मेन्द्रियार्थ संयोग कहलाता है। जैसे नेत्र से अत्यधिक चमकने वाले सूर्य, अग्नि, आदि दृश्यों को अधिक मात्रा में देखना, नेत्र इन्द्रिय के साथ अतियोग हैं नेत्र से रूपों को सर्वथा न देखना रूप का अयोग है। नेत्र से विषयों का अधिक समीप होना, अधिक दूर होना तथा कठोर, भयानक, वीभत्स, विकृत और वित्रासन (शीघ्र ही भयोत्पादक रूपों का देखना) नेत्र इन्द्रिय का रूपों के साथ मिथ्या योग है।

अत्यन्त ऊँचे शब्द, मेघों की गर्जना, गाड़ियों की सीटी की आवाज, बस हार्न तथा जोर से रोने की ध्वनि कान से सुनना शब्दों का अतियोग है। कानों से शब्दों का सर्वथा न सुनना शब्दों का अयोग है। कठोर, प्रियवस्तु के विनाश सूचक, तिरस्कार सूचक तथा भयंकर आदि शब्दों का सुनना शब्द का मिथ्या योग है।

नाक के साथ अत्यन्त तीक्ष्ण एवं उग्र गंधों का अत्यधिक मात्रा में संयोग होना अतियोग है। गंधों का सर्वथा नासिका से संयोग न होना अयोग है। दुर्गन्ध, सड़ी गली वस्तुओं की गंध और प्रतिकूल अपवित्र क्लिन्न गंध आदि का ज्ञानेन्द्रिय से संयोग होना मिथ्यायोग हैं।

जिह्वा से रसों का अत्यधिक स्वाद लेना अतियोग है। रसों का सर्वथा जिह्वा से संयोग न होना या अल्परस का संयोग होना अयोग है। आहार विधि विज्ञान के विपरीत रसों का जिह्वा से संयोग होना मिथ्यायोग है। जैसे – मधु और घृत का सममात्रा में सेवन या मछली और दुग्ध का एक साथ रसनेन्द्रिय से संयोग होना मिथ्यायोग है।

त्वचा के साथ अत्यधिक शीत या अत्यधिक ऊष्ण जल से स्नान, अभ्यंग; और उबटन आदि का अत्यधिक संयोग प्रतियोग है। इनका सर्वथा सेवन न करना अयोग है। शीत, ऊष्ण स्पर्श वाले स्नान, अभ्यंग आदि का यथाक्रम सेवन न करना, ऊँच नीच स्थानों का त्वचा से स्पर्श होना मिथ्यायोग है।

लिंग (लक्षण)

लिंग ज्ञान – इसके अन्तर्गत – पूर्वरूप, रूप, उपशय – अनुपशय एवं सम्प्राप्ति आते हैं।

लक्षणों को दोषों की प्रधानता के आधार पर जाना जा सकता है।

(i) शारीरिक दोष – वात, पित्त, कफ

(ii) मानसिक दोष – रज, तम

औषध –

औषध ज्ञान – द्रव्यों को प्रकृति के अनुसार आहार के रूप में और औषध के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।

क. कुछ द्रव्य कुपित दोषों का शमन करते हैं जैसे–तैल, यह वात का शमन करता है।

ख. कुछ द्रव्य धातुओं को दूषित करते हैं जैसे – मछली और दुग्ध।

ग. कुछ द्रव्य शरीर को स्वस्थ रखने के लिए लाभकारी हैं, जैसे – आँवला, गेहूँ, जौ, गौदुग्ध, मूँगदाल इत्यादि।

5. द्रव्य, गुण, रस, वीर्य, विपाक एवं प्रभाव –

प्राकृतिक द्रव्यों के गुण–

गुण द्रव्य की विशेषता है, रस द्रव्य का स्वाद है, विपाक द्रव्यों की पाचन प्रक्रिया है, वीर्य द्रव्य की शक्ति और प्रभाव द्रव्य के विशिष्ट कर्म को दर्शाता है।

आयुर्वेद के अनुसार, द्रव्य संसार में सम्पूर्ण एवं प्रत्येक शरीर को स्वस्थ बनाये रखने और रोगों के निवारण में उपयोगी है। यह उत्पत्ति स्वरूप वानस्पतिक, जांगम या पार्थिव हो सकते है।

प्राकृतिक तत्वों का गुण जिनका औषध और आहार के रूप में उपयोग होता है पाँच मुख्य भागों में वर्णित हैं – रस, गुण वीर्य, विपाक और प्रभाव।

आयुर्वेद में शारीरिक घटकों व उनके भौतिक गुणों के साथ इन गुणों के परस्पर संबंध का व्यापक स्तर पर वर्णन किया गया है।

रस का अर्थ –

द्रव्य का जिह्वा से संयोग होने पर जो मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त, कषाय स्वाद की प्रतीति होती है उसे रस कहते हैं।

प्रत्येक द्रव्य का निर्माण पंचमहाभूत से होता है। द्रव्यों का पंचमहाभूतों की प्रधानता के आधार पर उत्पत्ति, प्रत्येक द्रव्य में एक विशिष्ट गुण का उत्पादन करती है जिसका शरीर के आधारभूत घटक द्रव्यों पर विशिष्ट प्रभाव होता है।

प्राकृतिक द्रव्यों के गुणों का यह ज्ञान उचित द्रव्य एवं औषधि का चिकित्सा में प्रयोग और शरीर के घटक द्रव्यों को साम्यावास्था में बनाये रखने में उपयोगी होता है। द्रव्यों के गुणों को रस, गुण, वीर्य, विपाक और प्रभाव के रूप में लिया जाता है तथा चिकित्सा में सफलता के लिए प्रयोग किया जाता है।

पाठगत प्रश्न 2.2

2.2 रिक्त स्थान भरें –

1. शारीरिक दोष ..... प्रकार के हैं।
2. कफ और वात दोष का स्थान क्रमशः ..... है।
3. पित्त ..... प्रकार के होते हैं।
4. भ्राजक पित्त का कार्य ..... है।
5. वात दोष ..... प्रकार के होते हैं।
6. अपान वायु का कार्य ..... है।
7. क्लेदक कफ ..... में उपस्थित होता है।
8. सप्तधातु ..... हैं
9. रक्त, मेद और शुक्र ..... है।
10. रसधातु की उपधातु ..... है।
11. आहार का मल ..... है।
12. त्रय उपस्तम्भ क्या है .....।
13. रोगों के हेतु ..... है।
14. प्राकृतिक द्रव्यों के पाँच गुण ..... हैं।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में आपने आयुर्वेद के सिद्धान्तों का अध्ययन किया जैसे – पंचमहाभूतात्मक सिद्धान्त के साथ पंचमहाभूतों का निर्माण एवं उनके गुण, त्रिदोष सिद्धान्त, सप्तधातु के साथ मलों का ज्ञान और शरीर को स्वस्थ बनाए रखने के लिए जैविक क्रियाविधि, आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य का उचित पालन करके स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा करना। रोगी व्यक्ति के विकारों का शमन करने के लिए – हेतु, लिंग और औषध का ज्ञान। अन्त में द्रव्यों की क्रियाविधि को समझने के लिए रस, गुण, वीर्य विपाक एवं प्रभाव का वर्णन।

पाठांत प्रश्न

1. आयुर्वेद के सिद्धान्तों का वर्णन करें।
2. दोषों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
3. निम्न पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
   1. आहार।
   2. निद्रा।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

2.1

1. आकाश, वायु, अग्नि, जल पृथ्वी।
2. गंध एवं रस।

2.2

1. वात, पित्त, कफ तीन
2. शरीर का उर्ध्वभाग एवं शरीर का अधोभाग।
3. पाचक, रंजक, भ्राजक, साधक और आलोचक पांच।
4. त्वचा का वर्ण और छाया।
5. प्राण, समान, उदान, व्यान, अपान पांच।
6. मल, मूत्र, शुक्र, आर्तव और गर्भ को अधोमार्ग की ओर प्रेरित कर निकालना।
7. आमाशय।
8. रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र।
9. धातु।
10. स्तन्य और आर्तव।
11. मल, मूत्र और अपानवायु।
12. आहार, निद्रा, ब्रहमचर्य।
13. काल, बुद्धि और असात्म्योन्द्रिय संयोग।
14. रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव।

3

स्वास्थ्य एवं स्वस्थवृत के साथ रोगों की रोकथाम के उपाय

पिछले अध्याय में आपने पंचमहाभूत सिद्धान्त, त्रिदोष, सप्तधातु और मल; आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य एवं हेतु, लिंग, औषध सिद्धान्त और द्रव्यों के गुणों के बारे में अध्ययन किया। इस अध्याय में आप स्वास्थ्य और स्वस्थवृत की अवधारणा के बारे में अध्ययन करेंगे, जो कि रोगों के विरूद्ध निवारक उपायों के रूप में कार्य करता है। स्वास्थ्य एवं स्वस्थवृत्त की इस कल्पना के अन्तर्गत सदवृत्त, दिनचर्या, और ऋतुचर्या, धारणीय एवं अधारणीय वेग आते हैं।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:

- स्वास्थ्य और स्वस्थवृत्त के संदर्भ में वेग, दिनचर्या, ऋतुचर्या, सदवृत्त और रोगों की रोकथाम के उपाय;
- रोगों की रोकथाम के पूर्व उपाय।

3.1 दिनचर्या – व्यक्तिगत स्वास्थ्य के लिए दिनचर्या

चित्र 3.1: दिनचर्या

एक व्यक्ति को अपना अच्छा स्वास्थ्य बनाए रखने के लिए प्रातःकाल जल्दी (ब्रह्ममुहुर्त) उठना चाहिए। बिस्तर छोड़ने के बाद उसे नित्यकर्म को पूरा कर लेना चाहिए।

दन्तधावन एवं मुखप्रक्षालन-

दाँतों को स्वच्छ रखने के लिए हमें कषाय, तिक्त और कटु रस की दातौन प्रयोग करनी चाहिए; जो मोटाई में कनिष्ठिका अंगुली के अग्रपर्व के बराबर हो और लम्बाई में 12 अंगुल (लगभग 9'') प्रमाण की होनी चाहिए। दातौन का अग्रभाग इस प्रकार कुचला होना चाहिए कि देखने में ब्रश जैसा लगे। दातौन से दाँतों के मांस को आघात न लगे इसका ध्यान करते हुए प्रातः और सायं दो बार दातौन करना चाहिए। जिह्वा के मैल को निकालने के लिए जिह्वा निर्लेखन का प्रयोग करना चाहिए।

चित्र 3.3 : दांतों की देखरेख

मुख से दुर्गंध को दूर करने के लिए व्यक्ति को अपने मुख में लवंग, वृन्त, सुन्दर पान की पत्ती, कपूर और छोटी इलायची का फल धारण करना चाहिए।

मुख में तैल का गण्डूष धारण करने से हनु और स्वर में बल की वृद्धि होती है, भोजन में स्वाद आता है मुख और कण्ठ में कभी भी शुष्कता नहीं आती, ओष्ठ के फटने का भय नहीं रहता और दांतों और मसूड़ों में किसी प्रकार का रोग नहीं होता और दांतों की जड़ें मजबूत होती हैं।

मुख की देखभाल

मुख को स्वच्छ रखना चाहिए और ताजे ठण्डे पानी से, ऑवला क्वाथ या क्षीरीवृक्ष के रस और दूध के मिश्रण से साफ करना चाहिए।

नेत्र की देखभाल-

प्रतिदिन नेत्रों में सौवीरांजन का प्रयोग करना चाहिए।

यह कफ का शमन करता है और दृष्टि को तीव्र बनाता है।

नासाकर्म-

नस्य (नाक के द्वारा) के रूप में अणुतैल का प्रयोग वर्षा, शरद और बसन्त ऋतु के दौरान दिन में तीन बार प्रतिदिन जब आकाश में मेघ न हों, तब करना चाहिए। विधिपूर्वक नस्य के प्रयोग से नेत्र, घ्राणेन्द्रिय और श्रोत इन्द्रिय नष्ट नहीं होती है तथा अर्दित (facial

paralysis) हनुस्तम्भ (Lockjaw) , पीनस (Rhinitis) एवं अर्धावभेदक (Migraine) रोग शान्त होते हैं।

बालों की देखभाल– कंघी करना केश के लिए लाभदायक है जिससे बालों से धूल और जुएं बाहर निकल जाती हैं।

कानों की देखरेख

कान की बाहरी नलिका में तेल का प्रयोग करने से श्रवण में कठिनाई, हनु और गर्दन की जकड़न कम होती है।

त्वचा की देखभाल

शरीर का अभ्यंग करने से त्वचा मुलायम होती है। धातु का पोषण और शरीर में लचीलापन आता है। पाँव का अभ्यंग करने से पैरों का खुर्दुरापन, जकड़ाहट, रूखापन और थकावट दूर होती है।

व्यायाम - (शारीरिक व्यायाम)

शरीर में स्थिरता लाने वाली और बल बढ़ाने वाली क्रियाओं को शारीरिक व्यायाम कहते हैं। शरीर बल के आधे बल के बराबर व्यायाम का अभ्यास करना चाहिए। नियमानुसार व्यायाम करने से देह में हलकापन, कार्य करने की शक्ति, शरीर में स्थिरता, दुःख सहने की क्षमता, बढे हुए दोषों को कम करता है और अग्नि की वृद्धि होती है। मात्रा से अधिक व्यायाम करने से थकावट, क्लम (बिना परिश्रम का थकावट) रस आदि धातुओं का नाश, प्यास की अधिकता, श्वास, कास, ज्वर और वमन रोग हो जाते हैं।

धूम्रपान-

धूम्रपान (औषधीय धूम्रपान) करने से सिर का भारीपन, सिरःशूल, पीनस, आधे सिर का दर्द (Hemicrania) , हिक्का, कास, दमा आदि रोग शान्त होते हैं। धूम्रवर्ति (Cigarete Holder) का निर्माण हरेणुका, प्रियंगु, पृथ्वीका, केशर, चन्दन, तेजपत्र, दालचीनी, इलायची, अगर, गुग्गुलु उदुम्बर, शल्लकी इत्यादि इन सभी औषधियों को पीसकर एक शरकण्डे के ऊपर लपेटकर जौ के आकार की आठ अंगुल लम्बी वर्ती बनानी चाहिए। छाया में रखने पर जब बत्ती सूख जाय तो सींक को निकालकर घृत, तैल आदि स्नेह से आर्द्रकर धूम्रनेत्र में रखकर अग्नि से जलाकर इस धूम्रपान का सेवन करना चाहिए।

शरीर की स्वच्छता-

शरीर मार्जन (sponging)

इसमें जल से भीगे हुए वस्त्र से शरीर की शुद्धि की जाती है और इससे शरीर की दुर्गन्ध, गुरूता (भारीपन), खुजली, मैल, तन्द्रा, पसीने की गंध नष्ट हो जाती है।

स्नान –(Bath)

स्नान करने से शरीर में पवित्रता आती है और यह आयु के लिए हितकर होता है। यह श्रम, स्वेद, मैल को दूर करता है तथा शरीर में बल और ओज को बढ़ाने वाला होता है।

चित्र 3.3 : सम्पूर्ण स्नान

3.2 ऋतुचर्या –

जो व्यक्ति ऋतुओं के अनुसार आहार और विहार का पालन करता है वह स्वस्थ रहता है। वर्ष में छः ऋतुयें बतायी गयी हैं इसमें शिशिर, बसन्त एवं ग्रीष्म (आदान काल) तथा वर्षा, शरद एवं हेमन्त (विसर्ग काल) ऋतुएं हैं। विसर्ग काल में शरीर में बल की वृद्धि होती है, जबकि आदानकाल में शरीर दुर्बल हो जाता है।

हेमन्त ऋतुचर्या – (शीतकाल का प्रथम अर्धभाग)

इस ऋतु में शारीरिक बल और जठराग्नि प्रबल होती है। अतः दूध के विकारमात्र (दही, मलाई, रबड़ी आदि) इक्षु विकार, (गुड़, राब, चीनी आदि), वसा, तैल, नये चावलों का भात और गरम जल का सेवन करना चाहिए। तैल का अभ्यंग, सिर पर तैल लगाना, धूपसेवन और शरीर पर गर्म एवं भारीवस्त्र धारण करना चाहिए। शीतकाल आ जाने पर लघु अन्न और ठण्डे पेय पदार्थ एवं वातवर्धक आहार द्रव्य तथा तीक्ष्ण मद्य का सेवन वर्जनीय है।

शिशिर ऋतुचर्या –(शीतकाल का दूसरा अर्धभाग)

हेमन्त और शिशिर दोनों ऋतुएं समान होती हैं अतः शिशिर ऋतु में भी हेमन्त ऋतु के समान सब विधियों का पालन करना चाहिए।

बसन्त ऋतुचर्या–

बसन्त ऋतु में शारीरिक बल मध्यम और जठराग्नि मंद होती है। हेमन्त ऋतु में संचित कफ बसन्त ऋतु में सूर्य की किरणों से द्रवित होकर जठराग्नि को मन्द कर देता है और अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इस ऋतु में वमन आदि पंचकर्म कराने चाहिए एवं गुरू, अम्ल, स्निग्ध और मधुर आहार लेना चाहिए तथा दिन में शयन नहीं करना चाहिए। बसन्त ऋतु में व्यायाम, औषधीय धूम्रपान, अंजन तथा गुनगुने जल से स्नान करना चाहिए। शरीर पर चन्दन और अगर का लेप लगाना चाहिए। मुख्यतः जौ और गेहूं का सेवन करना चाहिए।

ग्रीष्म ऋतुचर्या –

ग्रीष्म ऋतु में सूर्य अपनी किरणों द्वारा संसार के स्नेह को सोख लेता है। अतः शरीर का स्वभाविक बल कम होने लगता है। इस ऋतु में मधुर तथा शीत वीर्य वाले द्रव्य, द्रव एवं स्निग्ध अन्नपान लाभदायक होते हैं। हमें चीनी के साथ शीतल मन्थ (घी, सत्तू, एवं शीतल

जल), जंगली पशु व पक्षियों का मांसरस, घी, दूध, और शाली चावल का सेवन करना चाहिए। इस ऋतु में लवण, अम्ल, कटु रस वाले और उष्णवीर्य द्रव्यों का सेवन करना चाहिए तथा व्यायाम नहीं करना चाहिए।

वर्षा ऋतु –

आदान काल में मनुष्य का शरीर अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। वर्षा ऋतु आ जाने पर वातादि दोषों से दुष्ट जाठराग्नि और भी दुर्बल हो जाती है। इस ऋतु में साधारण रूप से सभी विधियों (नियमों) का पालन करना चाहिए। वर्षा ऋतु में शीतद्रव्य, दिवाशयन (दिन में सोना), नदी का जल, व्यायाम, धूप में बैठना और मैथुन का त्याग करना चाहिए। वर्षा ऋतु में खाने–पीने की सभी चीजों में मधु मिलाकर लेना चाहिए। अम्ल, लवण रस ना लें और स्नेह द्रव्यों की प्रधानता भोजन में रहनी चाहिए जो वातवृद्धि का शमन करें। इस ऋतु में भोजन में पुराने जौ, गेहूं, शालीचावल, जांगल पशु–पक्षियों का मांस, मूंग का यूष, मधु मिलाकर अल्प मात्रा में मद्य, अरिष्ट एवं गरम करके शीतल किया गया जल का सेवन करना चाहिए। हल्के और पवित्र वस्त्र धारण करने चाहिए और क्लेद रहित सूखे स्थान पर रहना चाहिए।

शरद ऋतुचर्या–

इस ऋतु में पित्त प्रकुपित हो जाता है इसलिए मधुर, लघु, शीतल, घृत रस युक्त एवं पित्त को शांत करने वाले अन्न पान का सेवन करना चाहिए। जौ, गेहूं एवं शालीचावल लाभकारी होता है। औषध युक्त घृत का पान, विरेचन और रक्तमोक्षण करना चाहिए। शरद ऋतु में धूप का सेवन, वसा, तैल, दही का सेवन और दिन में शयन नहीं करना चाहिए।

3.3 वेग (Urges)

वेग दो प्रकार के होते हैं:

(1) अधारणीय।

(2) धारणीय।

अधारणीय वेग संख्या में 13 होते हैं। इसके अंतर्गत मूत्र, पुरीष, शुक्र, अपानवायु, वमन, छींक, उद्गार (डकार) जँभाई, भूख, पिपासा (प्यास), वाष्प (आँसू), निद्रा और परिश्रम से उत्पन्न श्वास आते हैं।

इन वेगों को रोकने के कारण शरीर में कई लक्षण उत्पन्न होते हैं। उदाहरण के लिए–

1. मूत्र का वेग रोकने से वंक्षण प्रदेश में आनाह।
2. पुरीष का वेग रोकने से पेट में शूलयुक्त आध्मान।
3. छींक का वेग रोकने से शिरःशूल एवं मन्यास्तम्भ।

4. उद्‌गार का वेग रोकने से हिक्का।

5. आँसू का वेग रोकने से प्रतिश्याय।

यदि आप इन रोगों से बचना चाहते हैं तो वेगों को रोकने का प्रयास न करें।

अपना हित चाहने वाले व्यक्तियों को मन, वचन और शरीर के निन्दित कर्मों के वेगों को नियंत्रित रखना चाहिए।

3.4 सद्‌वृत्त-

सद्‌वृत्त का पालन स्वास्थ्य के लिए लाभदायक है और इसकी प्राप्ति धर्म के बिना नहीं हो सकती है।

(1) अपने शुभचिंतकों पर विश्वास रखें तथा दुश्मनों से दूरी बना कर रखें।

(2) देवता, गौ, ब्राह्मण, गुरू, वृद्ध, चिकित्सक, राजा और आचार्य की पूजा एवं सम्मान करना चाहिए।

(3) दूसरों पर आपत्ति आने पर दया करनी चाहिए।

(4) शत्रुओं के प्रति दया भाव रखें।

(5) ज्ञान, उदारता, मित्रता, करूणता, प्रफुल्लता, उदासीनता और शांतभाव के प्रति समर्पित रहें।

(6) झूठ बोलना, दूसरे के धन में और शत्रुता में रूचि नहीं लेनी चाहिए।

(7) पर–योनिगमन, पर–स्त्रीगमन (दूसरे की स्त्री से संभोग) नहीं करना चाहिए।

(8) दूसरे के दोषों का उल्लेख नहीं करना चाहिए, कठोर वचन नहीं बोलने चाहिए, बिना संदर्भ कोई बात नहीं बोलनी चाहिए।

(9) दूसरों से ईर्ष्या न करें।

(10) हमें दूसरों की लक्ष्मी को प्राप्त करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। सम्मानित व्यक्ति को अपमानित नहीं करना चाहिए।

धारणीय और अधारणीय वेगों की देखभाल, दिनचर्या और रात्रिचर्या का नियम एवं व्यक्तिगत और सामाजिक सदवृत्त, आहार के साथ स्वस्थवृत्त के विषय है।

पाठगत प्रश्न 3.1

1. आदान काल की ऋतुएं हैं .....।

2. स्वस्थ व्यक्ति को ..... में जागना चाहिए।

3. नित्य प्रयोग होने वाला अंजन ..... है।

4. अपने शारीरिक बल के ..... बराबर व्यायाम करना चाहिए।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में आपने स्वास्थ्य से सम्बन्धित दिनचर्या एवं ऋतुचर्या के बारे में तथा स्वस्थ व्यक्ति के लिए सद्वृत्त, धारणीय एवं आधारणीय वेगों के बारे में अध्ययन किया तथा जाना कि रोगों के शमन और रोकथाम के लिए इनका पालन करना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. महाभूत, रस और दोषों के पारस्परिक सम्बन्धों का वर्णन करें।

2. हेमन्त ऋतुचर्या का वर्णन करें।

3. अधारणीय वेगों के बारे में संक्षिप्त वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

3.1

1. वर्षा, शरद एवं हेमन्त

2. ब्रह्ममुहुर्त

3. सौवीरांजन

4. अर्धबल के

4

गर्भावक्रान्ति
(गर्भव्याकरण)

गर्भावक्रान्ति (भ्रूण विज्ञान) में गर्भ धारण, विकास और एक निश्चित समय अवधि में गर्भ के शरीर से बाहर आने का अध्ययन किया जाता है। अष्ट प्रकृति एवं षोडश विकारों के मिलने से जीव की उत्पत्ति माता के गर्भाशय में होती है। गर्भ का विकास गर्भाशय में माता, पिता, आत्मा, सात्म्य आदि गर्भकर भावों, माता के द्वारा लिये गये आहार से, काल द्वारा परिपाक होने से एवं स्वभाव सिद्ध अपने बढ़ने वाली प्रकृति से होता है।

उद्देश्य –

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगेः

(1) गर्भावक्रान्ति को समझना;

(2) गर्भ (भ्रूण) का अर्थ;

(3) गर्भ में अंग–प्रत्यंगों के निर्माण के दौरान गर्भ के घटक द्रव्यों को जानना;

(4) दौहृद का कारण;

(5) गर्भाशय में गर्भ की स्थिति।

4.1 गर्भावक्रान्ति

गर्भावक्रान्ति या गर्भव्याकरण के अन्तर्गत गर्भ का धारण, उसकी वृद्धि एवं एक निश्चित अवधि में गर्भ का मातृ योनि से बाहर आने का अध्ययन किया जाता है।

4.2 भूत

भूत सर्वशरीर के कारण है, भूतादि, अव्यक्त, मूलप्रकृति सभी जीवित चराचर जगत के कारण हैं। अष्ट प्रकृति इस प्रकार हैं–

अव्यक्त, महत, अहंकार और पंचभूत।

अव्यक्त, महत, अहंकार और पंचतन्मात्राएं ये अष्ट प्रकृति (उत्पत्ति के कारण) हैं।

जबकि शेष सोलह (षोडष विकार –11 इन्द्रियाँ और 5 महाभूत) विकार हैं।

4.3 शुद्ध शुक्र एवं शुद्ध आर्तव के गुण–

शुद्ध शुक्र के गुण–

शुद्ध शुक्र स्फटिक के समान, द्रव, स्निग्ध, मधुर रस, और गंध में मधु के समान होता है।

शुद्ध आर्तव के गुण–

उचित समय में जो आर्तव एक मास से संचित रहता है आंशिक कृष्ण वर्ण का होता है वह वायु के द्वारा अधोमुख होकर आर्तववह स्रोतसो द्वारा योनि से बाहर निकलता है। 12 वर्ष की आयु पर मासिक धर्म की प्रवृत्ति निरन्तर एक उचित समय पर होती है तथा पचास वर्ष की आयु तक बंद हो जाती है। जो आर्तव शुद्ध और गर्भधारण योग्य होता है वह वर्ण में खरगोश के रक्त या लाक्षा के रस के समान होता है तथा कपड़े पर लगने पर उसको साफ करने से दाग नहीं रहता।

जिस प्रकार उचित ऋतु, क्षेत्र, अम्बु (जल) और बीज के संयोग से बीज अंकुरित होता है उसी प्रकार से ऋतुकाल, शुद्ध गर्भाशय, आहार रस और शुक्र–शोणित के संयोग से गर्भ की उत्पत्ति होती है।

जिस प्रकार एक दीप में रखा हुआ घी अग्नि से पिघलता है उसी प्रकार स्त्री का अण्डाणु मैथुन के समय सक्रिय होता है। सक्रिय अण्डाणु शुक्राणु से संयोग होकर गर्भाशय में पहुंचते हैं और वहाँ पर आत्मा का संयोग होकर गर्भ की उत्पत्ति होती है।

4.4 गर्भ

गर्भ से आप क्या समझते हैं?

गर्भाशय में जब शुक्र और आर्तव का संयोग होता है तब क्रियाशील मन, आत्मा और प्रकृति के साथ सम्मिलित रूप से गर्भ कहलाता है, जिसकी वृद्धि माता के उदर में होती है।

गर्भाशय में होने वाले शुक्र और आर्तव के संयोग के साथ आत्मा का भी संयोग होता है। प्रधान रूप से शुक्र सौम्य और आर्तव आग्नेय होता है। दूसरे महाभूत भी इसमें थोड़े–थोड़े मात्रा में रहते हैं जो एक–दूसरे की सहायता करते हैं और एक–दूसरे में समाहित होते हैं। अग्नि और वायु के नियन्त्रण में शुक्र की प्रवृत्ति योनिमार्ग में होने पर शुक्र का आर्तव से संयोग होता है और इस प्रकार, अग्नि और सोम का संयोग होकर ये गर्भाशय में पहुंचते हैं।

शुक्र की प्रधानता होने पर पुरूष और आर्तव की प्रधानता होने पर स्त्री की उत्पत्ति होती है। ऋतुकाल की अवधि पूर्ण हो जाने पर स्त्री के गर्भाशय का मुख संकुचित हो जाता है। रजोनिवृत्ति के बाद सम दिनों संभोग से पुत्र और विषम दिनों में संभोग से पुत्री की उत्पत्ति होती है।

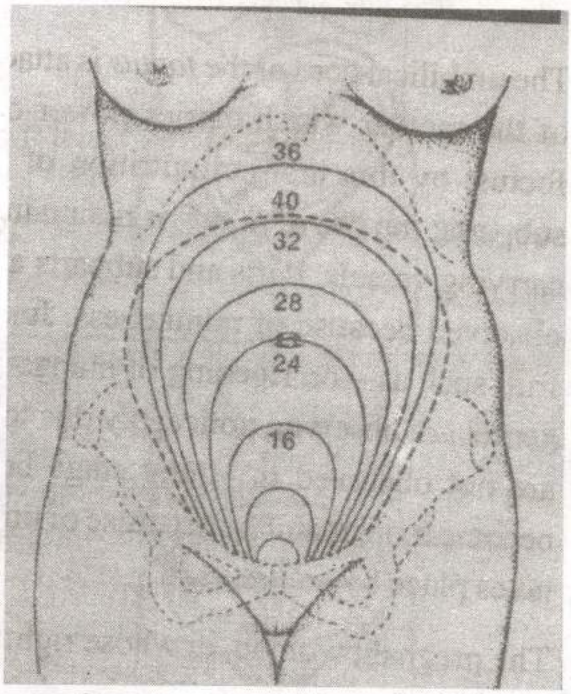

चित्र 4.1 : मासानुमासिक गर्भ की स्थिति

प्रथम मास (महीने) में गर्भ का स्वरूप कलल (semisolid) होता है। दूसरे महीने में त्रिदोषों द्वारा पाक होकर महाभूतों का समूह घन होता है। तीसरे मास में पंच पिण्डक की उत्पत्ति हस्त, पाद, और सिर के लिए सूक्ष्म रूप में अंग–प्रत्यंगों का विभाग होता है।

चतुर्थ मास में सभी अंग–प्रत्यंगों का स्वरूप व्यक्त हो जाता है एवं गर्भ का हृदय स्पष्ट होने से चेतना धातु (Consciousness) व्यक्त होती है। चतुर्थ मास में गर्भ के मन में सुख–दुख की प्रतीति होने लगती है इसलिए उसी समय से गर्भ में स्पन्दन क्रिया होती है और अनेक जन्मों में अनुभव किये हुए इन्द्रिय विषयों की वह इच्छा करता है और क्योंकि उस समय माता के शरीर में दो हृदय होते हैं। इसलिए माता को दौहृद संज्ञा दी जाती है।

इस काल में दौहृद का अपमान कर देने से गर्भ में विकृति उत्पन्न हो जाती है जैसे– दौहृद अवमानना से–कुब्ज, कुणि, खंज, वामन (Dwarf), जड़, (dull) विकृत चक्षु और बिना चक्षु पुत्र की प्राप्ति।

उस समय गर्भ माता के हृदय के द्वारा अपनी इच्छा को प्रकट करता है तो गर्भिणी माता की इच्छानुसार वस्तुओं की प्राप्ति होने पर स्वस्थ और न प्राप्त होने पर अस्वस्थ होती हैं। इसलिए इच्छाओं की पूर्ति होने पर माता स्वस्थ और दीर्घजीवी पुत्र को जन्म देती है। इसलिए कुशल चिकित्सक वही वस्तु उसके आहार विहार में प्रयुक्त करते हैं जो गर्भिणी के लिए प्रिय होता है और जो उसके लिए हितकारी होता है जिससे गर्भ में विकार उत्पन्न न हो।

पाँचवे महीने में मन अधिक प्रबुद्ध एवं सचेत होता है। छठे माँस में बुद्धि की उत्पत्ति होती है। सातवें मास में गर्भ के सभी अंग–प्रत्यंग व्यक्त हो जाते हैं परंतु ओज अस्थिर रहता है और इस प्रकार यदि उस माह भ्रूण का प्रसव हो जाता है तो भ्रूण जीवित नहीं रहता। 9 वें से 12वें मास तक सामान्य प्रसव का समय होता है। इस मास में शिशु पैदा होने से जीवित रहता है।

माता के रसवहा नाड़ी में गर्भ की नाड़ी लगी रहती है वह नाड़ी माता के आहार रस के प्रसाद अंश को गर्भ के लिए पहुंचाती है। उसी उपस्नेह से गर्भ की वृद्धि होती है, इसी पोषण के कारण गर्भ के अंग–प्रत्यंग विकसित होते हैं। गर्भ का जीवन रसवहा नाड़ियों द्वारा संवहन होने वाले आहार रस से निर्मित होता है। गर्भ के अंग–प्रत्यंग एक समय पर उत्पन्न होते हैं लेकिन वे अत्यन्त सूक्ष्म होने के कारण दिखायी नहीं देते।

जैसे– बाँस का अंकुर या आम के फल की किस प्रकार वृद्धि होती है इसका पता नहीं लगता है वैसे ही गर्भ छोटा होने से उसकी वृद्धि का पता नहीं चलता है।

जैसे आम का फल पकने पर उसमें केशर, मांस (गुद्दा), अस्थि (गुठली), मज्जा ये सब कुछ एक काल के बाद अलग–अलग दिखते हैं किन्तु वे ही भाग नये आम फलों में छोटे होने से नहीं मिलते हैं, केसर, गुठली इनको काल ही व्यक्त करता है इसी प्रकार बाँस के अंकुरों की वृद्धि जाननी चाहिए। गर्भ छोटा होने से अंग–प्रत्यंग रहने पर भी छोटे–छोटे होने के कारण उनका साक्षात्कार नहीं होता है। उनका साक्षात्कार (प्रतीति) समय से ही होता है।

जिस गर्भवती स्त्री के दाहिने स्तन में प्रथमतः दुग्ध दिखेगा, दाहिनी आँख बड़ी होगी, पहले दाहिनी जंघा उत्थित होगी वह पुत्र को पैदा करेगी, तथा जिस गर्भवती स्त्री की बायीं आँख बड़ी होगी और पहले बायीं जंघा उत्थित होगी वह पुत्री को पैदा करेगी।

गर्भवती स्त्रियों में आर्तववह स्रोतों के मार्ग, गर्भ के कारण रूक जाते हैं, इसलिए गर्भवती स्त्रियों का आर्तव नहीं दिखता, किन्तु वह रूका हुआ आर्तव स्तनों को प्राप्त होता है। जिससे गर्भिणी के स्तन पुष्ट और उन्नत हो जाते हैं।

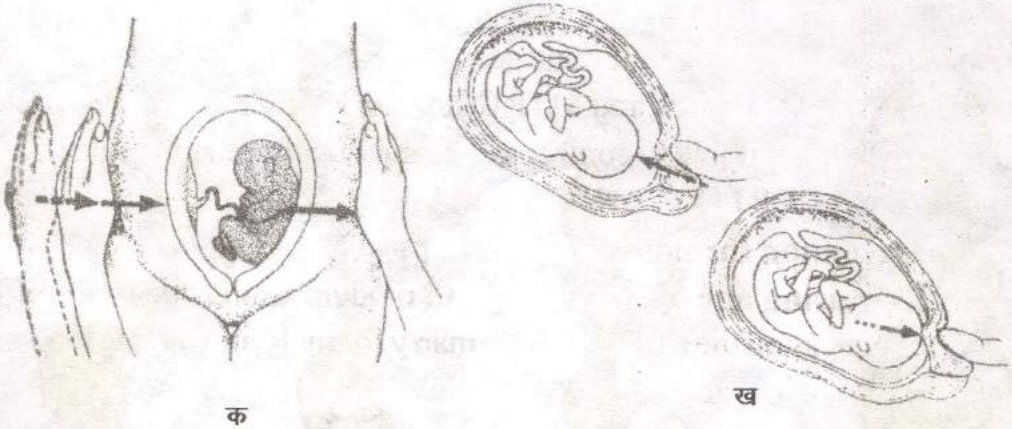

क

चित्र 4.2: क. भ्रूण की स्थिति ख. और ग. भ्रूण के बाहर निकलने की प्रकिया

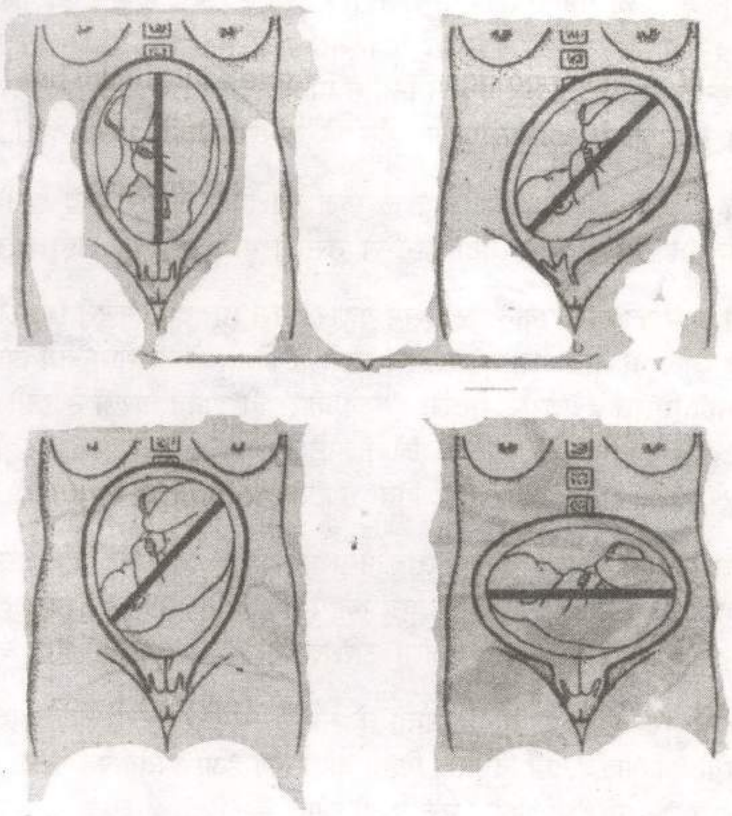

चित्र 4.3 गर्भ की विभिन्न स्थितियां

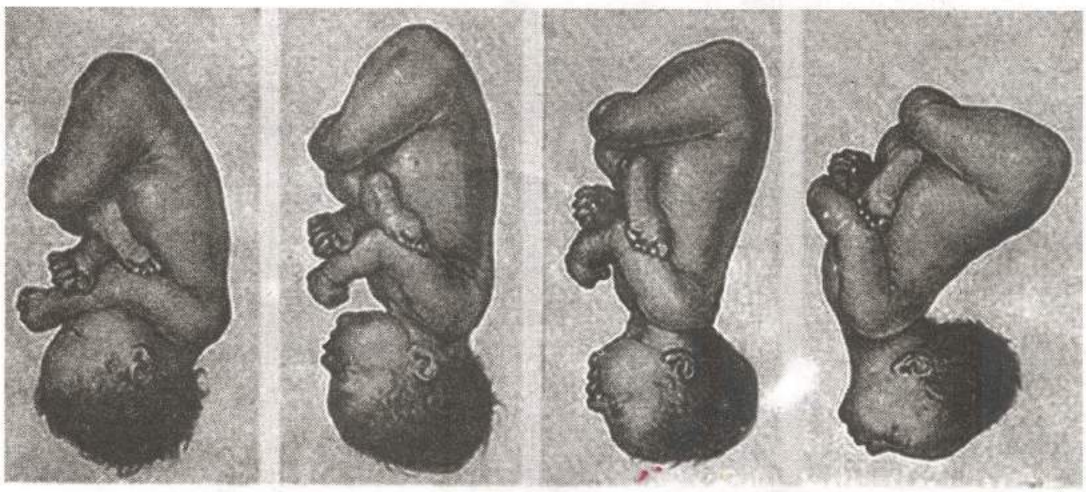

चित्र 4.4 विभिन्न स्थितियों में सिर के प्रस्तुतीकरण के प्रकार

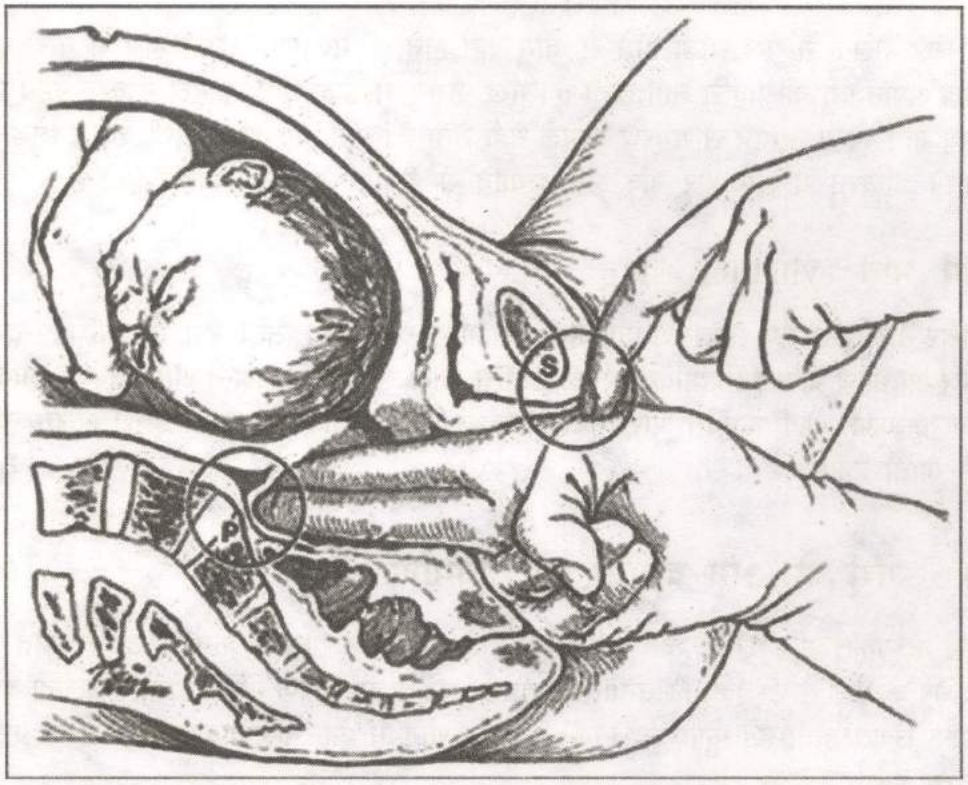

चित्र 4.5 प्रसव के समय योनि मुखद्वार का माप

युग्म गर्भ का कारण

अधर्म के कारण वायु द्वारा बीज का गर्भाशय में दो भागों में विभाग होने एवं दो आत्माओं का प्रादुर्भाव होने से दो गर्भों का गर्भस्थान में प्रादुर्भाव होता है ये यम (Twin) कहलाते हैं।

4.5 गर्भ शरीर के घटक द्रव्य

गर्भ के विभिन्न अवयव पितृण, मातृण, रसज, आत्मज, सत्वज और सात्म्यज भावों से उत्पन्न होते हैं। गर्भ के कठोर भाग जैसे केश, दाढ़ी, मूंछ, लोम, अस्थि, नख, दन्त, सिरा, स्नायु, धमनी, वीर्य, पिता से उत्पन्न होते हैं। मांस, शोणित, मेद, मज्जा हृदय, नाभि, यकृत, प्लीहा, आन्त्र तथा गुदा इत्यादि मृदु भाग माता से उत्पन्न होते हैं।

शरीर की पुष्टि, बल, वर्ण, स्थिरता, हानि, रस से उत्पन्न होते हैं। एकादश इन्द्रियाँ, ज्ञान, विज्ञान, आयुष, सुख, दुख इत्यादि आत्मा से उत्पन्न होते हैं। पराक्रम, आरोग्य, बल, वर्ण, मेधा धारणात्मक बुद्धि सात्म्य से उत्पन्न होते हैं। गर्भधारण के समय माता–पिता जो भी आहार विहार और आचरण करते हैं गर्भ भी वैसा ही होता है।

गर्भस्थ बालक में मल थोड़ा होने से, वायु कम होने से, पक्वाशय छोटा होने से मल, मूत्र और अपानवायु की प्रवृत्ति नहीं होती है। मुख जरायु से ढका होने से गले में कफ रहने से, वायु मार्ग खुला न होने से गर्भस्थ बालक नहीं रोता है। माता का श्वास लेना, श्वास छोड़ना, घूमने– फिरने से श्रम और नींद लेने इत्यादि से ही गर्भ के सब व्यवहार होतें हैं।

मर्म भाव (Vital forces)

शरीर में संयुक्त रूप से द्वादश प्राण होते हैं। अग्नि, सोम, वायु, सत्व, रज, तम, पाँच इन्द्रियाँ और आत्मा ये प्राण हैं। क्योंकि गर्भ की उत्पत्ति काल से जीवन के अन्त समय तक ये जीवन की क्रियाओं को निष्पादित और नियंत्रित करते हैं, जब तक कि आत्मा इनसे अलग नहीं हो जाती है।

4.6 गर्भ में अंग-प्रत्यंगों का निर्माण

गर्भ के यकृत और प्लीहा रक्त से उत्पन्न होते हैं, फेफड़े रक्त के फेन से उत्पन्न होते हैं, रूधिर के मल से उण्डुक की उत्पत्ति होती है। यकृत दाएँ तरफ स्थित होता है, प्लीहा बाएँ तरफ स्थित होती है। फुफ्फुस (Lungs) हृदय भाग में एक नलिकाकार संरचना से जुड़ा रहता है।

रक्त और कफ का जो उत्तम सार भाग है उसको पित्त से पचाते समय वायु भी उधर दौड़ती है जिससे आन्त्र, गुदा और वस्ति उत्पन्न होते हैं।

उदर में पचने वाले कफ, रक्त और मांस से जिह्वा उत्पन्न होती है। रक्त और मेद के सार से वृक्क बनते हैं। मांस, रक्त और कफ के सार से हृदय बनता है।

गर्भ की वृद्धि माता के आहार रस एवं वायु से होती है। गर्भ के नाभि के मध्यभाग में अग्निस्थान है। वायु उसी स्थान को उकसाता है जिससे गर्भ का शरीर बढ़ता है।

गर्भ महिला के गर्भाशय में उसकी पीठ की ओर एक फ्लैक्सॉन की स्थिति में रहता है और प्रसव के दौरान प्राकृतिक रूप से सिर के बल योनि की ओर अग्रसर होता है।

पाठगत प्रश्न 4.1

रिक्त स्थान भरें :

1. गर्भ शब्द का अर्थ .....।
2. कठोर भाग जैसे– सिर, केश, शमश्रु (दाढ़ी), अस्थि, नख की उत्पत्ति ..... से होती है।
3. युग्म गर्भ का कारण ..... है।
4. माता के उदर (गर्भाशय) में गर्भ की स्थिति ..... होती है।

आपने क्या सीखा

- इस अध्याय में हमने पढा कि–
- भूत सर्वशरीर की उत्पत्ति के कारण है, भूताग्नि, अव्यक्त, मूलप्रकृति सभी जीवित पदार्थों की उत्पत्ति के कारण हैं। ये आठ प्रकार के हैं– अव्यक्त, महत, अहंकार और पंचभूत। ये अव्यक्त, महत अहंकार और पंच तन्मात्राएं, ये प्रकृति कहलाते हैं।

शुक्र और आर्तव संयोग के पश्चात् गर्भाशय में स्थित होते हैं और आत्मा प्रकृति और विकारों से मिलकर गर्भ संज्ञा को प्राप्त होता है। जिसकी वृद्धि माता के उदर में होती है।

- भ्रूण का निर्माण।
- गर्भ के घटक।
- गर्भ में अंग–प्रत्यंग निर्माण।

पाठान्त अभ्यास

1. गर्भ क्या है? माता के गर्भाशय में गर्भ निर्माण की प्रक्रिया का उल्लेख करें।
2. गर्भ में अंग निर्माण की प्रक्रिया का वर्णन करें।
3. गर्भ की स्थिति का विस्तार से सचित्र वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. गर्भाशय में स्थित शुक्र और आर्तव का संयोग और आत्मा से संयोग।
2. पिता।
3. जब बीज का वायु के द्वारा विभाग होता है, दो आत्माओं का प्रादुर्भाव गर्भाशय में अधर्म के कारण होता है।
4. स्त्रियों के गर्भाशय में गर्भ संकुचित तथा अभिमुख होता है।

पाद टिप्पणी

गर्भव्याकरण	–	Embryology
गर्भ	–	Foetus
भूत	–	Basic Elements
प्रकृति	–	Causative source
शुक्र	–	Semen

आर्तव	–	Menstrual blood
दौहृदनी	–	having two Hearts
ओजस	–	Immunity
अपरा	–	Placenta
उण्डूक	–	Caecum
प्लीहा	–	Spleen
यकृतप्लीहानौ	–	Liver and spleen
क्लोम	–	Gall bladder
फुफ्फुस	–	Lungs

5

प्रकृति
(प्राकृतिक संगठन)

मनुष्य की प्रकृति (प्राकृतिक संरचना) गर्भकाल के दौरान दोष की प्रधानता पर निर्भर करती है। सम्पूर्ण जीवनकाल में प्रकृति बदलती नहीं है। दोषों की प्रधानता के अनुसार एक प्रकृति के गुण दुसरे की प्रकृति से अलग होते हैं जैसे– शारीरिक संगठन, मानसिक स्तर, शारीरिक संरचना, पसन्द, नापसन्द और आहार इत्यादि। रोग के लक्षण, रोग ज्ञान एवं रोग चिकित्सा के लिए उस व्यक्ति की प्रकृति का आकलन महत्वपूर्ण होता है।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन के करने के पश्चात् हम जानेंगे–

1. प्रकृति का अर्थ (प्राकृतिक मनोदैहिक संगठन);
2. महा प्रकृति का अर्थ;
3. विभिन्न दोषिक प्रकृति के गुण।

5.1 प्रकृति एवं इसके प्रकार

प्रकृति–

मनुष्य की प्रकृति दोषों के आधार पर गर्भकाल (शुक्र शोणित संयोग के समय) में ही निर्धारित हो जाती है। प्रकृति सात प्रकार की होती है। अलग–अलग दोषों के आधार पर, दो दोषों एवं तीन दोषों के आधार पर। शुक्र शोणित संयोग के समय जिस दोष की प्रधानता होती है, उसी के आधार पर प्रकृति का निर्धारण होता है।

वातिक प्रकृति–

वातिक प्रकृति का मनुष्य अत्यन्त विचलित मन वाला–शीतद्वेषी, कुरूप, चोरी करने वाला,

मत्सरी, दूसरे से द्वेष करने वाला, पुष्प प्रकृति वाला, संगीत प्रेमी, फटे हाथ पैर वाला, अत्यन्त रूक्ष, दाढ़ी, मूंछ, नख और बाल वाला, क्रोधी, दन्त और नखों को खाने वाला होता है। इस प्रकृति का व्यक्ति धैर्य रहित, दृढ़ मैत्री न रखने वाला, कृतध्न, कृश होने से रूक्ष शरीर वाला, शरीर पर रक्तवाहिनी नाड़ी दृष्टिगोचर होने वाला, बकवादी, शीघ्रगामी, घूमने वाला, चंचल चित्त वाला होता है और इसके पास रत्न, पैसा और मित्र कम होते है।

पैत्तिक प्रकृति

पित्त प्रकृति के व्यक्ति को पसीना अधिक आता है, बदन में दुर्गन्ध आती है, अंग पीले और शिथिल, नाखून, आँख, तालू, जिह्वा, ओष्ठ, हाथ पैर ताम्र वर्ण के होते हैं। शरीर विकृत होता है, बली पलित (केश सफेद होना) और खालित्य से युक्त होता है। बहुत खाने वाला, उष्ण चीजों से द्वेष रखने वाला, शीघ्र कुपित होने वाला और शीघ्र शान्त होने वाला, मध्यम शक्ति वाला और मध्यम आयु वाला होता है। बुद्धिमान, तेज बुद्धि वाला, तेजस्वी, युद्ध में जिसका पराक्रम सहन नहीं किया जाता, नींद में सुवर्ण, पलाशपुष्प, अग्नि, विद्युत, उल्का इन वस्तुओं को देखता है। डर से घबराता नहीं है। उग्र लोगों के लिए कठोर, नम्र लोगों के लिए सांत्वना देने वाला एवं बोलने में जिसे कष्ट हो क्योंकि मुखपाक हरवक्त होता रहता है।

कफज प्रकृति

कफज प्रकृति वाला मनुष्य दूब, इन्दीवर, तलवार, ताजे नीम के पत्ते, शरकण्डा इनमें से किसी एक वस्तु के वर्ण के समान वर्ण वाला होता है। सुन्दर शरीर वाला–प्रियदर्शन, मीठी वस्तुओं को खाने वाला, उपकार को जानने वाला, धैर्यशील, सहनशील, अलोलुप, शक्तिवाला और बहुत देर से ग्रहण करने वाला होता है। उसकी आँखें सफेद होती हैं, केश मजबूत, टेढे और भ्रमर (भौरे) के समान नीले वर्ण के होते हैं। वह स्वप्न में कमल के साथ, हंस, चक्रवाक और सुन्दर जलाशयों को देखता है। कफ प्रकृति वाले मनुष्य के नेत्र प्रदेश लाल होते हैं। शरीर गठीला होता है कान्ति स्निग्ध होती है। सत्वगुण से युक्त होता है। कष्ट को सहन करने वाला और गुरू का सम्मान करने वाला होता है। शास्त्रों में उसकी बुद्धि दृढ़ होती है। उसके मित्र और धन स्थिर रहते हैं। बहुत देर तक सोचने के बाद बहुत दान देता है। सोच समझकर बोलने वाला और हर समय गुरूओं का मान करने वाला होता है।

महाप्रकृति-

इसके अतिरिक्त सत्व, रज, तम के अनुसार और द्वन्दज संयोग के आधार पर त्रिदोषों के समान सात प्रकार की महाप्रकृतियाँ बनती हैं। ब्रह्मकाय, माहेन्द्रकाय, वारूणयकाय, कोबेरकाय, गान्धर्वकाय, याम्यकाय एवं अर्शकाय। ये सात प्रकार की महाप्रकृतियाँ सत्व प्रधान होती हैं। इनको सात्विक काय कहते हैं।

राजस काय में आसुरकाय, सर्पकाय, शाकुनकाय, राक्षसकाय, पैशाचकाय और प्रेतकाय हैं।

ये छः राजसकाय होते हैं और रजोगुण प्रधान होते हैं।

तामसकाय तीन प्रकार के तम गुण प्रधान होते हैं। पशुकाय, मत्स्यकाय और वानस्पत्यकाय।

5.2 प्रकृति के आकलन हेतु प्रारूप

(क) मनोदैहिक संगठन

क्र.सं.	परीक्षा के बिन्दु	वातिक	पैत्तिक	कफज
1.	सामान्य शारीरिक संगठन	कृशकाय, कम विकसित, दुर्बल	मृदु, मध्यम प्रमाण मध्यम बल	पूर्ण विकसित, बलशाली
2.	रूप	कृष्ण	साफ, ताम्रवर्ण का	साफ, स्वर्णपीत
3.	त्वचा	रूक्ष और शीत	हाथ पीले धब्बे युक्त	शीत, मृदु, स्निग्ध तैलीय, आर्द्र, चमकदार
4.	झुर्रियां	शीघ्र	शीघ्र	देर से
5.	मनोविज्ञान	चिड़चिड़ा	उग्र	शान्त या प्रसन्न
6.	सिरा और स्नायु	उभार युक्त	उभरे नहीं, निष्क्रिय सिरा और पेशियाँ	उचित रूप से ढ़की
7.	केश	सूखे, खुरदुरे, बिखरे	मृदु, भूरे, सीधे और कम एवं शीघ्र गंजापन	मोटे, मुलायम, घने तैलीय और काले
8.	वक्ष	पतला	मध्यम	पूर्ण निर्मित
9.	मस्तक	पतला	मध्यम	चौड़ा
10.	नेत्र	गोल, कुरूप रुक्ष, भारी, धूसर निद्रा के समय अधखुले	पतली, खाँचयुक्त छोटे, चंचल, शराबी जैसी सूर्य किरणों से प्रभावित	बड़े, श्वेत और चमकदार
11.	दाँत	छोटे, बिखरे, पतले अनियमित	अनियमित, पीले, छितरे हुए	नियमित आकार के और घने
12.	नख	पतले, रूक्ष, भंगुर	पतले, चिकने, गुलाबी या ताम्र वर्ण के	मोटा, स्निग्ध चमकदार
13.	नेत्र भ्रू	पतले, अनियमित	पतले	मोटे, नियमित
14.	संधियाँ	दुर्बल/लचीली	लचीली व मुलायम	सुविकसित, बलवान
15.	जानु	छोटा, कठोर	लचीला व मुलायम	सुविकसित, बलवान
16.	चाल	हड़बड़ी एवं जल्दी	फुर्तीली एवं तेज	स्थिर एवं राजसी

(ख) शारीरिक क्रियात्मक परीक्षण

	वात	पित्त	कफ	
1.	क्षुधा, तृष्णा, पाचन	वात प्रकृति का मनुष्य आहार और जल जल्दी ग्रहण करता है पाचन शक्ति कमजोर होती है।	अन्न व पान बार–बार और ज्यादा, पाचन क्रिया सामान्य, अतिसार से जल्दी–जल्दी पीड़ित।	अन्न का सेवन धीरे–धीरे, नियमित मात्रावत आहार का सेवन, क्षुधा व तृष्णा को धारण कर सकता है पाचन सामान्य, नित्यक्रिया नियमित
2.	आहारीय पसन्द	लघु, ऊष्ण, मधुर और अम्ल रस प्रधान द्रव्य	मधुर, तिक्त, कटु और शीत अन्नपान	उष्ण, तिक्त, कटु अन्नपान मध्यम
3.	मल और मूत्रत्याग	अल्पमात्रा में	अधिक मात्रा	मध्यम मात्रा
4.	शरीर, मुख, कांख और स्वेद की गंध	असहनीय	दुर्गन्धित, अम्ल गंधीय	अल्प, असहनीय
5.	मैथुन सहिष्णुता	कमजोर	मध्यम	प्रबल
6.	शीत प्रेम	कम	अधिक	मध्यम
7.	शीत सहिष्णुता	अल्प	मध्यम	ज्यादा
8.	उष्णता प्रेम	ज्यादा	अल्प	मध्यम
9.	उष्ण सहिष्णुता	ज्यादा	कम	मध्यम
10.	कंपन	नियमित	अनियमित	कभी–कभी

(ग) मानसिक परीक्षण

1.	पुष्पमाला धारण, विनम्रता और निर्भरता	निम्न	अधिक	मध्यम
2.	आत्मिकता	निम्न	अधिक	मध्यम
3.	धर्मपरायणता	निम्न	अधिक	मध्यम
4.	ईश्वर में विश्वास	कम	पूर्ण विश्वास	विश्वास
5.	साहसी एवं निर्भीकता	निम्न	अधिक	मध्यम
6.	मानसिक शांति	निम्न	अधिक	मध्यम
7.	ग्रहण शक्ति	उत्कृष्ट	मध्यम	मध्यम
8.	स्मृति	कमजोर	उत्कृष्ट	अच्छी

व्याकरणीय परीक्षण

1.	उँचाई	अधिक	मध्यम	आनुपातिक
2.	भार	हल्का	मध्यम	भारी
3.	उँचाई–भार प्रतिशत	अधिक	मध्यम	कम
4.	शरीर क्षेत्रफल	कम	मध्यम	अधिक
5.	उपत्वचीय वसा	अल्प	मध्यम	अधिक

पाठगत प्रश्न 5.1

रिक्त स्थान भरें :

1. दोषों की प्रधानता के आधार पर प्रकृति का निर्धारण ..... समय होता है।
2. वात प्रकृति का मनुष्य स्वप्न में ..... देखता है।
3. पित्त प्रकृति के मनुष्य को स्वेद ..... आता है।
4. प्रकृति ..... प्रकार की होती हैं।
5. महाप्रकृतियाँ ..... हैं।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने प्रकृति और इसके प्रकारों के बारे में जाना है। शुक्र शोणित संयोग के समय दोषों की प्रधानता के आधार पर प्रकृति निर्धारित होती है। हमने प्रकृति के परीक्षण के बारे में भी जाना है।

पाठान्त प्रश्न

1. वातिक प्रकृति के गुणों का वर्णन करें।
2. सत्व गुण प्रधान सप्त महाप्रकृतियों पर विचार प्रकट कीजिए।
3. मनोदैहिक प्रकृति के परीक्षण के प्रारूप का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. निषेचन क्रिया के।
2. आसमान में उड़ना।
3. अत्यधिक।
4. सात।
5. आठ।

अध्याय में दिये गए परीक्षणों के प्रपत्र बनायें और अपने मित्रों से उनके बारे में प्रश्न पूछें।

पाद टिप्पणी

प्रकृति – प्राकृतिक मनोवृत्ति संरचना

महाप्रकृति – मानसिक संरचना

दोषीप्रकृति – शारीरिक संरचना

6

शरीर के सह–अंग (प्रत्यंग)

मनुष्य की शरीर रचना और शरीर क्रिया को समझने के लिए शरीर की संरचना और शरीर के कार्यों की जानकारी महत्वपूर्ण है। इस अध्याय में हम शरीर की आधारभूत संरचना का अध्ययन करेंगे और त्वचा, अस्थि स्नायु, अंग एवं इनके प्रकारों के बारे में विचार करेंगे।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे–

- शरीर के विभिन्न प्रकार के प्रत्यंग;
- त्वचा, कला (Skin and Mucous membrane);
- प्रत्यंग की संख्या और प्रकार;
- दोष, धातु एवं मलों की संख्या और प्रकार;
- विभिन्न आशय।

6.1 शारीरिक अंग

गर्भाशय में शुक्र (sperm) और शोणित (ovum) जब आत्मा प्रधानादि अष्ट प्रकृति और सोलह विकारों से मिलते हैं तो उसे गर्भ कहा जाता है। चेतनायुक्त उस गर्भ को वायु विभक्त करता है, तेज उसको पचाता है, जल उसको गीला करता है, पृथ्वी उसको संगठित करती है, आकाश उसको बढ़ाता है। इसी प्रकार बढ़ा हुआ गर्भ जब हाथ, पैर, जिह्वा, नासिका, कर्ण, नितम्ब इत्यादि अंगों से युक्त होता है तो उसे शरीर कहते हैं। शरीर के छः अंग होते हैं–चार शाखाएं, पाँचवा मध्य शरीर, और छठा शिर।

कपाल (vertax), उदर (abdomen), पृष्ठ (Back), नाभि (Umblicus) ललाट (Forehead), नासा (Nose), चिबुक (chin), वस्ति (Urinary bladder), ग्रीवा (Neck), ये सभी एक–एक हैं।

कान (Ear), आँख (Eye), भौंह (Eyebrow), शंख (Temples), गाल, (Cheeks) अंस (Shoulder) कक्ष (Axilla) वंक्षण प्रदेश (Inguinal region) स्तन (Breast), वृषण (Testes), पार्श्व (Sides), स्फिक् (Hips) जानु (Knees), कूर्पर (Elbow), बाहु (Upper arm) उरू (Thighs) आदि दो–दो तथा बीस अंगुलियां व स्त्रोतस प्रत्यंग हैं।

6.2 शरीर के अंगों की संरचना का संक्षिप्त विवरण

त्वक, कला, धातु, मल, दोष, यकृत, प्लीहा, फुफ्फुस, उण्डुक, हृदय, आशय, आन्त्र, दो वृक्क, स्त्रोतस, कण्डरा, जाल, कूर्च, रज्जू, सीवनी, संघात, सीमान्त, अस्थियों, सन्धियों, स्नायु, मांसपेशियों, मर्म, शिराओं और धमनियों का उल्लेख नीचे किया गया है:

- स्नायु - (Ligaments) - 900
- अस्थि - (Bones) - 300
- सन्धि - (Joints) - 210
- मर्म - (Vital parts) - 107
- धमनी - (Arteries) - 24
- त्वक् की परत - (Skin) - 7

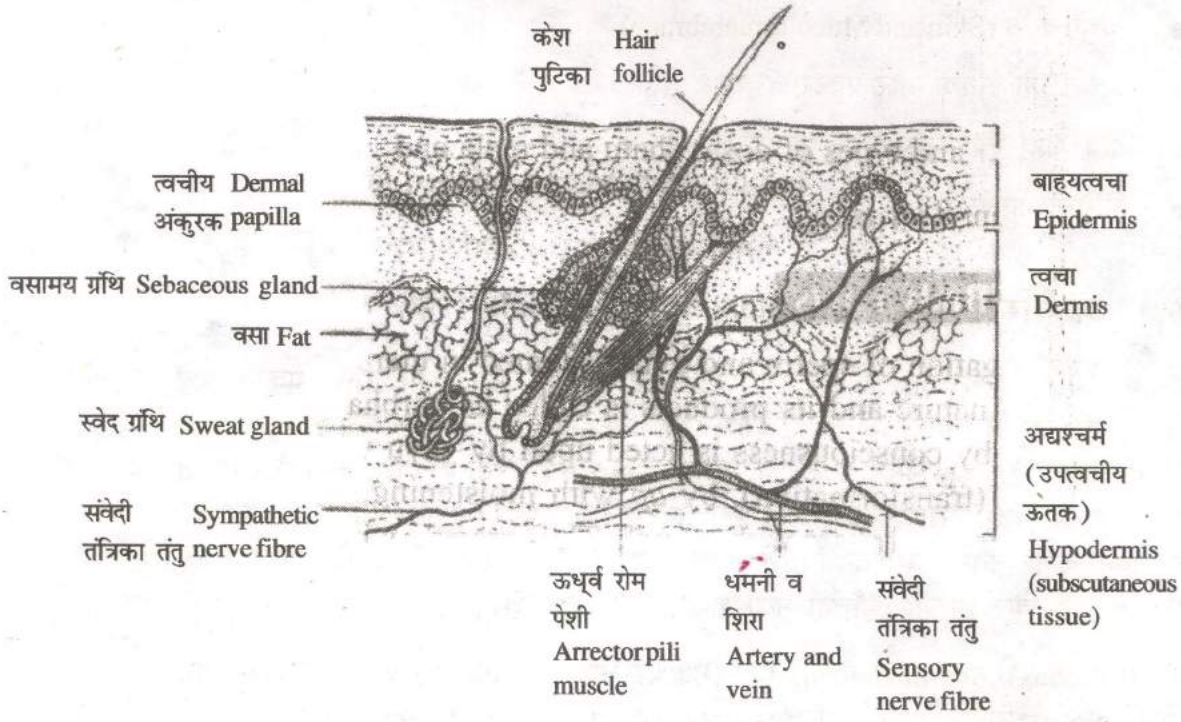

चित्र 6.1 त्वचा (सूक्ष्मदर्शी दृश्य)

- कला - (membranes) - 7
- आशय - (Viscera) - 7
- धातु - 7
- सिराएं - 700
- पेशियाँ (Muscles) - 500
- दोष - 3
- मल - 3
- स्रोत - 9

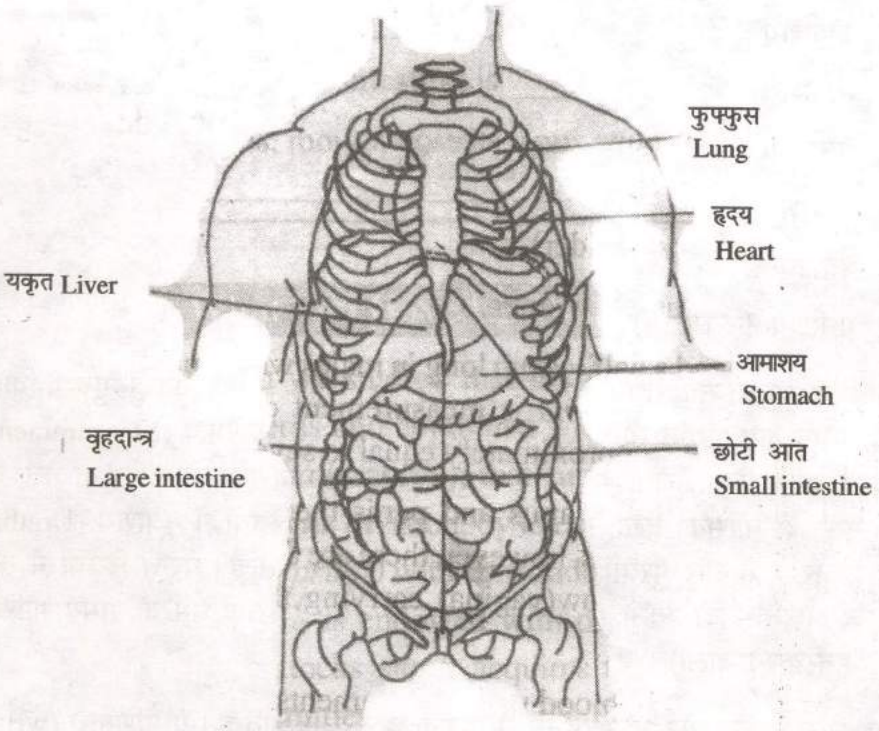

चित्र 6.2 : शरीर के आन्तरिक अंग

- कण्डरा - (Tendon) - 16
- जाल - (Network) - 16
- कूर्च – 6
- रज्जू – 4

- सेवनी – 7
- संघात – 14
- सीमान्त – 14
- योगवाही स्रोत (अनुपूरक मार्ग) – 22
- आन्त्र (Intestine) – 2
- आशय (Viscera) – 7 होते है

7 आशय नीचे दर्शाए गए हैं:

- वाताशय
- पित्ताशय
- कफाशय
- रक्ताशय
- आमाशय
- पक्वाशय
- मूत्राशय
- गर्भाशय (स्त्रियों में)

पुरूषों में आन्त्र साढ़े तीन व्याम लम्बी होती है। स्त्रियों की आन्त्र पुरूषों की अपेक्षा आधा व्याम कम अर्थात तीन व्याम की होती है। व्याम का परिमाप (Measurement) दोनों हाथ फैलाकर लिया जाता है यह लगभग सात फीट के बराबर होता है। दो नेत्र, दो कान, एक मुख, दो नासिका छिद्र, गुदा और मेढ्र (Penis) या स्त्रियों में मूत्राशय (Urethra) और इस प्रकार, स्त्री और पुरूषों में कुल नौ बहिर्मुख स्रोत होते है। परन्तु स्त्रियों में तीन स्रोत अधिक होते है– दो स्तनों में और एक रजोवह स्रोत (मासिक धर्म के समय मासिक स्राव का वहन करने वाला).

मांस, सिरा, स्नायु और अस्थि इनमें से प्रत्येक चार जाल होते है। ये मणिबन्ध (wrist joint) और गुल्फ (Ankle Joint) में होते हैं।

कूर्च (Brush like structure) छः होते हैं, दो हाथों में, दो पैरों में, एक ग्रीवा में और एक और मेढ्र में, इस प्रकार कुल छः कूर्च होते हैं।

चार बड़ी–बड़ी मांस रज्जुएँ होती हैं, वे पृष्ठवंश (Vertebral column) के दोनों ओर (बाहर और भीतर) पेशियों को बाँधने के लिए होती हैं। दो माँस रज्जुएं बाहर और दो भीतर की ओर होती हैं।

सीवनी सात हैं। मस्तक (Head) पर पाँच, जिह्वातल में एक और मेढ्र के नीचे एक और इस प्रकार कुल सात सीवनी हैं।

हड्डियों के संघात (दृढ़ जोड़) चौदह होते हैं। उनमें से तीन गुल्फ, जानु और वंक्षण प्रदेश में, अन्य पैर और दोनों हाथों में त्रिक् और शिर की हड्डियों में एक–एक संघात होते हैं। त्रिक् को कटि प्रदेश कहते हैं।

पाठगत प्रश्न 6.1

रिक्त स्थान भरें:

1. मस्तक, नाभि, गाल, उरू, कक्षा ..... हैं।
2. त्वचा की परत ..... होती हैं।
3. सिरायें संख्या में ..... होती हैं।
4. आशय ..... होते हैं।
5. आंत की लम्बाई ..... है।
6. आँख, कान, मुख, नाक, गुदा और मेढ्र (लिंग) ये नौ ..... हैं।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने अध्ययन किया कि गर्भाशय में रहने वाले शुक्र और शोणित जब आत्मा प्रधानादि अष्ट प्रकृति और सोलह विकारों से मिलते हैं, तो इसे गर्भ कहा जाता है। चेतनायुक्त गर्भ को वायु विभाजित करता है, तेज उसको पचाता है, जल उसको गीला करता है, पृथ्वी उसको संगठित करती है, आकाश उसको बढ़ाता है। इस प्रकार बढ़ा हुआ गर्भ जब हाथ, पैर, जिह्वा, नासिका, कर्ण, नितम्ब इत्यादि अंगों से युक्त होता है तो शरीर कहा जाता है। वह छः अंगों वाला– चार शाखाएं, पाँचवा मध्य शरीर और छठा शिर होता है। कपाल, उदर, पृष्ठ, नाभि, ललाट, नासा, चिबुक, वस्ति, ग्रीवा ये प्रत्येक एक–एक हैं। कान, आँख, भौंह, शंख, अंस, गाल, कक्षा, स्तन, वृषण, पार्श्व, स्फिक्, जानु, कूर्पर, बाहु, ऊरू आदि दो–दो, बीस अंगुलियाँ और स्रोतस प्रत्यङ्ग हैं।

पाठान्त प्रश्न

1. शरीर के प्रत्यंग क्या हैं?
2. विभिन्न प्रकार के आशयों पर विचार व्यक्त कीजिए।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

6.1

1. प्रत्यंग।

2. सात।
3. सात सौ।
4. सात।
5. तीन और अर्ध व्याम।
6. बहिर्मुख स्रोत।

पाद टिप्पणी Foot note

त्वक् – Skin
कला – Membranes
आशय – Viscera
धातु – Constituting material
सिरा – Blood vessels(vein)
पेशी – Muscles
स्नायु – Ligaments
अस्थि – bones
सन्धि – Joints
मर्म – Vital Parts
धमनी – Blood vessels(Artery)
दोष – Substance vitiating the body
मल – Exceretory substance
स्रोतस – Opening
कण्डरा – Tendons
जाल – Networks
कूर्च – Brush like structure
रज्जू – Facial bands for muscles
सेवनी – Raphe
संघात – Joints made up of more than two bones
सीमान्त – Suture
योगवाही स्त्रोत – Complementary passage
आन्त्र – Intestines
आशय – Viscera
वाताशय – Site of Vata

पित्ताशय – Site of Pitta

कफाशय – Site of Kapha

रक्ताशय – Site of Rakta

आमाशय – Stomach

पक्वाशय – Intestines

मूत्राशय – Urinary bladder

गर्भाशय – Uterus

7

पेशी-अस्थि तंत्र
अस्थि (Bones), सन्धि (Joints)
स्नायु (Ligaments), पेशी (Muscles)

पिछले अध्याय में हम शरीर के विभिन्न भागों जैसे हाथ, पैर, जिह्वा, नासा, कर्ण, नितम्ब इत्यादि के बारे में अध्ययन कर चुके हैं। इसे शरीर नाम से जाना जाता है। इस शरीर के छः भाग होते हैं- चार शाखायें, पाँचवा मध्य भाग और छठा शिर होता है। शरीर के इन अंगों में अस्थियाँ, सन्धियाँ, स्नायु, और पेशियाँ बहुत महत्वपूर्ण संरचनाएँ हैं और ये शरीर के गतिशील रहने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

उद्देश्य-

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:-

- पेशी-अस्थि संस्थान को समझना;
- अपने शरीर में अस्थि, सन्धि, स्नायु, पेशी के प्रकार और इनका महत्वपूर्ण योगदान।

7.1 पेशी-अस्थि तंत्र

पेशी-अस्थि तंत्र, अस्थियों, सन्धियों, स्नायुओं और पेशियों से निर्मित होता है। यह शरीर की क्रियाशीलता और गमन (संचलन) में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

7.2 अस्थियों का वितरण -

शरीर में तीन सौ अस्थियाँ होती हैं। उनमें से 120 अस्थियाँ शाखाओं में होती हैं। एक सौ सत्रह (117) श्रोणि, पार्श्व, पृष्ठ, उरु में होती हैं। तिरसठ (63)अस्थियाँ ग्रीवा के उर्ध्वभाग में होती हैं।

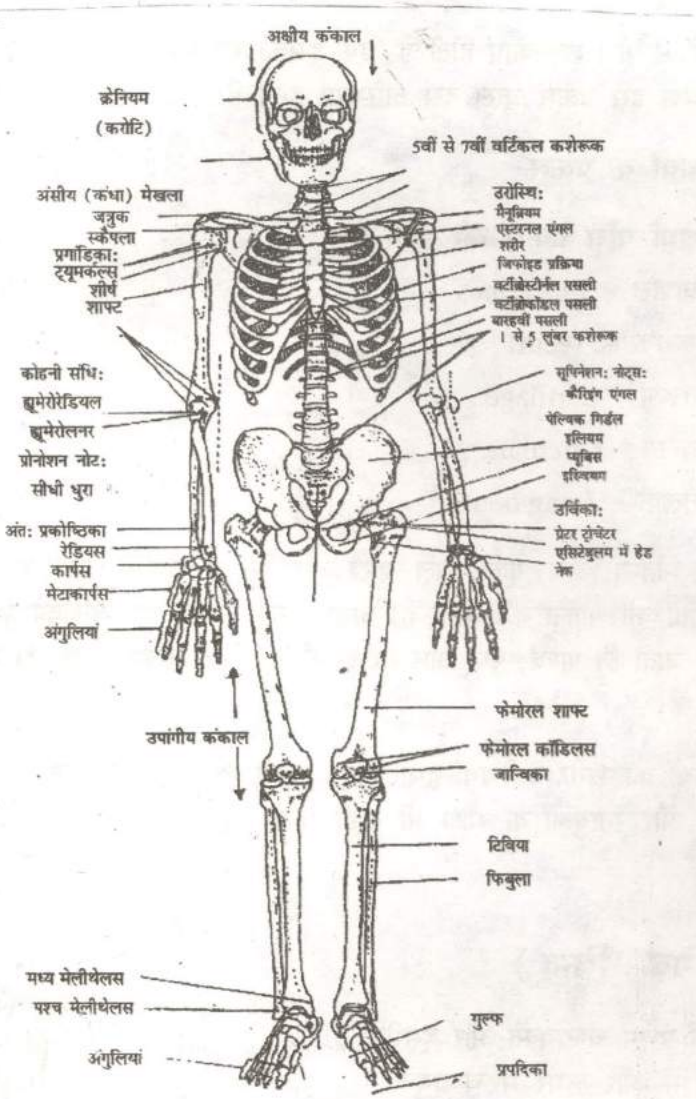

चित्र 7.1 मानव कंकाल

पैर की प्रत्येक अंगुली में तीन-तीन हड्डियां और अंगूठे में दो हड्डी होती हैं। इस प्रकार, कुल चौदह अस्थियाँ होती हैं। तल, कूर्च, गुल्फ प्रदेश की दस अस्थियाँ हैं। एक पार्ष्णि (Heel) में, दो जंघा (Legs) में, एक जानु (Knee) में, एक उरू (Thigh) में, इस प्रकार एक पैर में अठाईस अस्थियाँ होती हैं। इसी प्रकार, समान अस्थियां दूसरे पैर और हाथ में भी होती हैं।

श्रोणि प्रदेश (Pelvic region) में पाँच अस्थियाँ होती हैं। इनमें से एक, एक गुदा, योनि में और दोनों नितम्बों की अस्थियों को मिलाकर चार अस्थियां होती हैं तथा पाँचवीं त्रिक प्रदेश में स्थित होती है। पार्श्व में एक तरफ छत्तीस (36) अस्थियाँ होती हैं, दूसरे पार्श्व में भी इसी प्रकार अस्थियां होती हैं। तीस अस्थियाँ पृष्ठ में, आठ छाती में दो अंस प्रदेश में होती हैं। गर्दन में नौ अस्थियाँ, कण्ठनाड़ी में चार, हनुप्रदेश में दो, दाँतों में बत्तीस, नाक में तीन, तालु में एक, गाल (cheek), कर्ण और शंख में एक-एक और शिर में छः अस्थियाँ होती हैं।

तलवों में पाँच शलाकाएं होती हैं, एक इसकी सहायक अस्थि और कूर्च और गुल्फ में दो-दो अस्थियां इस प्रकार कुल दस अस्थियां होती हैं।

अस्थियों के प्रकार-

अस्थियाँ पाँच प्रकार की होती हैं।

1. कपाल - Flat bones
2. रूचक - Teeth
3. तरूण - Cartilage
4. वलय - Circular
5. नलक - Long bones

जानु, नितम्ब, अंस, गाल, तालु, शंख और सिर में कपाल अस्थियाँ होती हैं। रूचक अस्थियों में दाँतों की गणना की जाती है। नासा, कर्ण, ग्रीवा और अक्षिकोषों की अस्थियों तरूणास्थि कही जाती हैं। पार्श्व, पृष्ठ और उर इनकी अस्थियाँ वलय संज्ञक हैं। शेष अस्थियाँ नलयसंज्ञक होती हैं।

प्राणियों का शरीर अस्थियों द्वारा धारण किया जाता है, जो पेशियों को सहारा देती हैं एवं ये सिरा और स्नायुओं के साथ भी जुड़ी रहती हैं।

7.3 संधियाँ (संयोगिक बिन्दु)

संधियाँ दो प्रकार की होती हैं प्रथम चेष्टायुक्त और दूसरी स्थिर। शाखाओं में, हनुप्रदेश में और कमर में चेष्टायुक्त सन्धियाँ होती हैं। शेष स्थिर संन्धियाँ होती हैं।

सन्धियों की संख्या दो सौ दस (210) है। उनमें से 68 शाखाओं में, 59 कोष्ठ में, और शेष ग्रीवा के ऊपर होती हैं।

शाखागत संधियाँ -

प्रत्येक पैर की अंगुलि में तीन-तीन संधियाँ होती हैं और दो अंगूठे में होती हैं। इस प्रकार ये 14 संधियाँ हैं। जानु, गुल्फ और वंक्षण में एक-एक संधि इस प्रकार कुल तीन हैं। इसी प्रकार एक पैर में कुल सतरह (17) संन्धियाँ होती हैं। इसी प्रकार दूसरे पैर और बाहु में भी इतनी ही सन्धियाँ होती हैं।

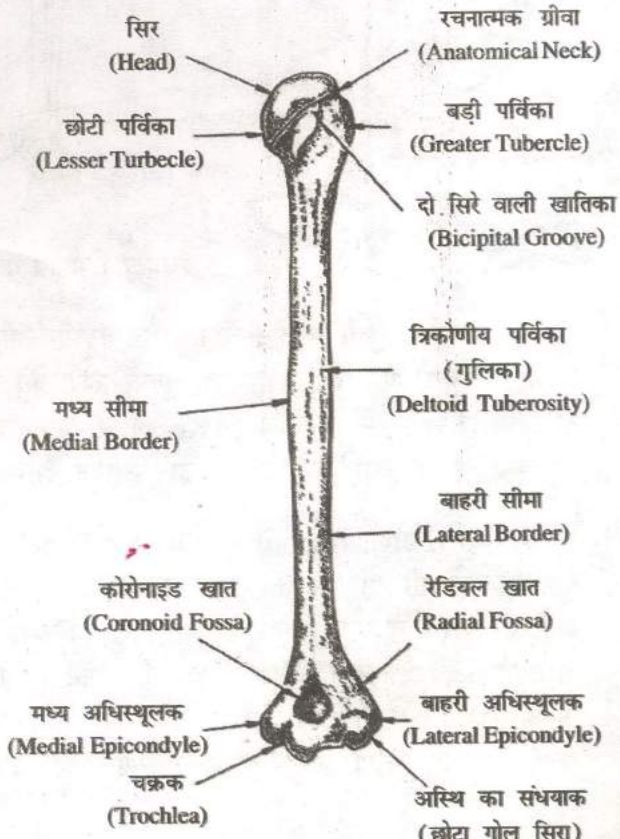

चित्र 7.2 : बायीं प्रगण्डिका सामने की स्थिति (ह्युमरस)

कटि और कपालों (Pelvic region) में तीन सन्धियाँ हैं। 24 सन्धियाँ पृष्ठवंश में होती हैं। पार्श्व में भी इतनी ही एवं छाती (chest) में आठ सन्धियाँ होती हैं। गर्दन में आठ सन्धियाँ, कण्ठ में तीन, हृदय, क्लोम सम्बद्ध नाड़ियों में 18 (अठारह) संधियाँ होती हैं। दन्तमूलों में 32, काकलक में एक, नासिका में एक, नेत्राश्रित वर्त्ममण्डल (Circle of eyelid) में दो, गालों में एक-एक, कानों एवं शंखों में एक-एक, हनुसन्धियों (Jaw joints) में दो, भृकुटि (eye brow) के ऊपर दो, शंखों के ऊपर दो, शिर कपालों में पाँच एवं मूर्धा में एक होती है।

संधियों के प्रकार-

संधियां आठ प्रकार की होती है

1. कोर 2. उदूखल 3. सामुद्रय 4. प्रतर 5. तुन्नसेवनी 6.वायसतुण्ड 7. मण्डल 8. शंखावर्त

इन संधियों में कोर सन्धियाँ अंगुली, मणिबन्ध (कलाई), गुल्फ (एड़ी), जानु (घुटना) और कूर्पर (कोहनी) में होती हैं। कक्षा, वंक्षण, दांत इनमें उदूखल संधियां होती हैं। अंसफलक (scapula), गुदा, भग, नितम्बों में सामुद्रय सन्धियाँ होती हैं।

ग्रीवा (Neck) और पृष्ठवंश (Vertebral column) में प्रतर नामक संधियां हैं। शिर और कटिप्रदेश (Pelvic region) में तुन्नसेवनी होती हैं।

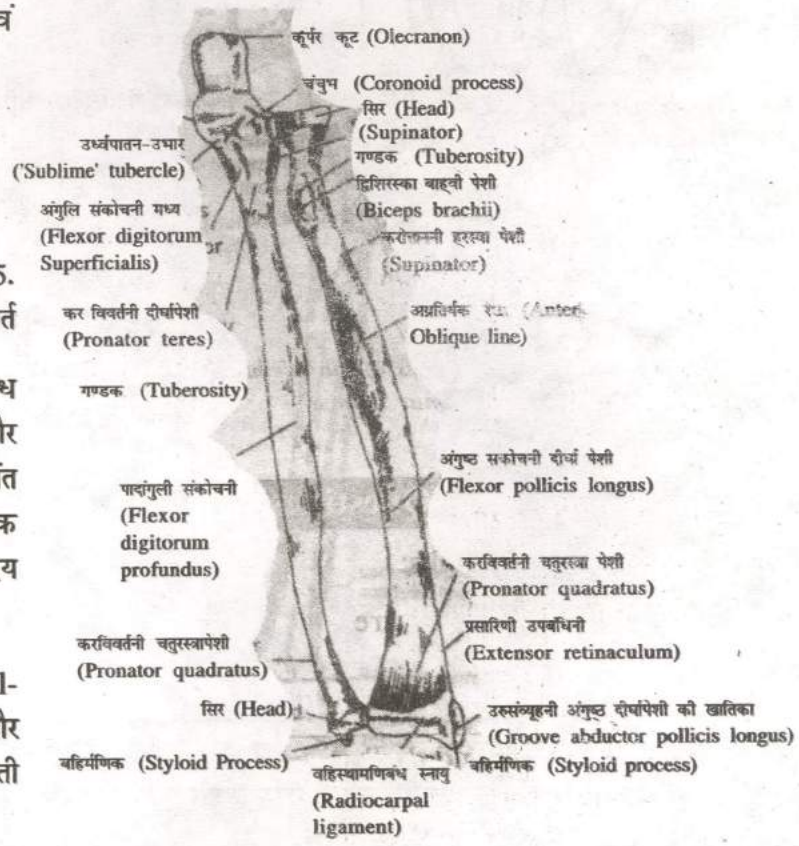

चित्र 7.3: बायीं बहि प्रकोष्ठिका एवं अन्तः प्रकोष्ठिका (सामने की स्थिति)

हनु के दोनों तरफ वायसतुण्ड संधियां हैं, कण्ठ, नेत्र, हृदय, क्लोम (Trachea), इनमें मण्डल नाम की संधियां होती हैं। श्रोत और श्रृंगाटक इनमें शंखावर्त संधियां होती हैं।

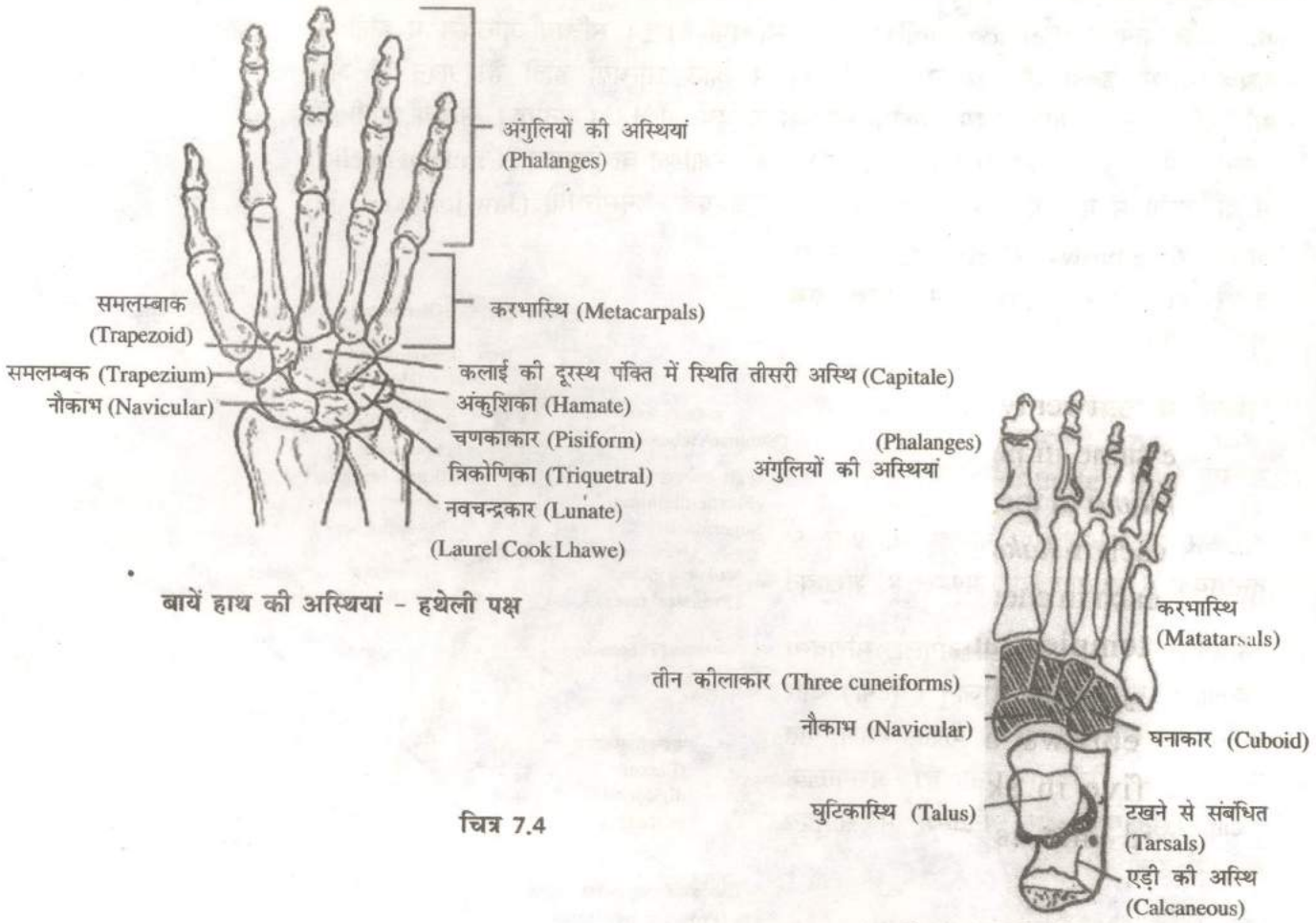

चित्र 7.4

पाठगत प्रश्न 7.1

रिक्त स्थान भरें :

1. 120 अस्थियां .....में स्थित होती हैं।
2. जानु, नितम्ब, अंस, गण्ड, गाल, शंख और शिर में ..... होती हैं।
3. संधियाँ ..... प्रकार की होती हैं।
4. कोर, उदूखल, सामुद्रय, प्रतर तुन्नसेबनी, वायसतुण्ड, मण्डल और शंखावर्त .... के प्रकार हैं।

7.4. स्नायु (Ligaments)

स्नायु 900 हैं। उनमें से शाखाओं में 600, कोष्ठ में 230, ग्रीवा के ऊपर 70 होते हैं। इस प्रकार कुल 900 स्नायु हैं।

पैरों की प्रत्येक अंगुलि में छः-छः स्नायु हैं। कुल मिलाकर पैर में 30 स्नायु होते हैं। तल में भी 30, कूर्च में भी 30 और गुल्फों में भी 30 हैं और जंघा में भी इतने ही हैं। (knee) जानु में 10, उरू में 40, वंक्षण में 10, इस प्रकार एक पैर में कुल 150 स्नायु होते हैं। इसी प्रकार, दूसरे पैर और हाथ में भी इतने ही स्नायु होते हैं।

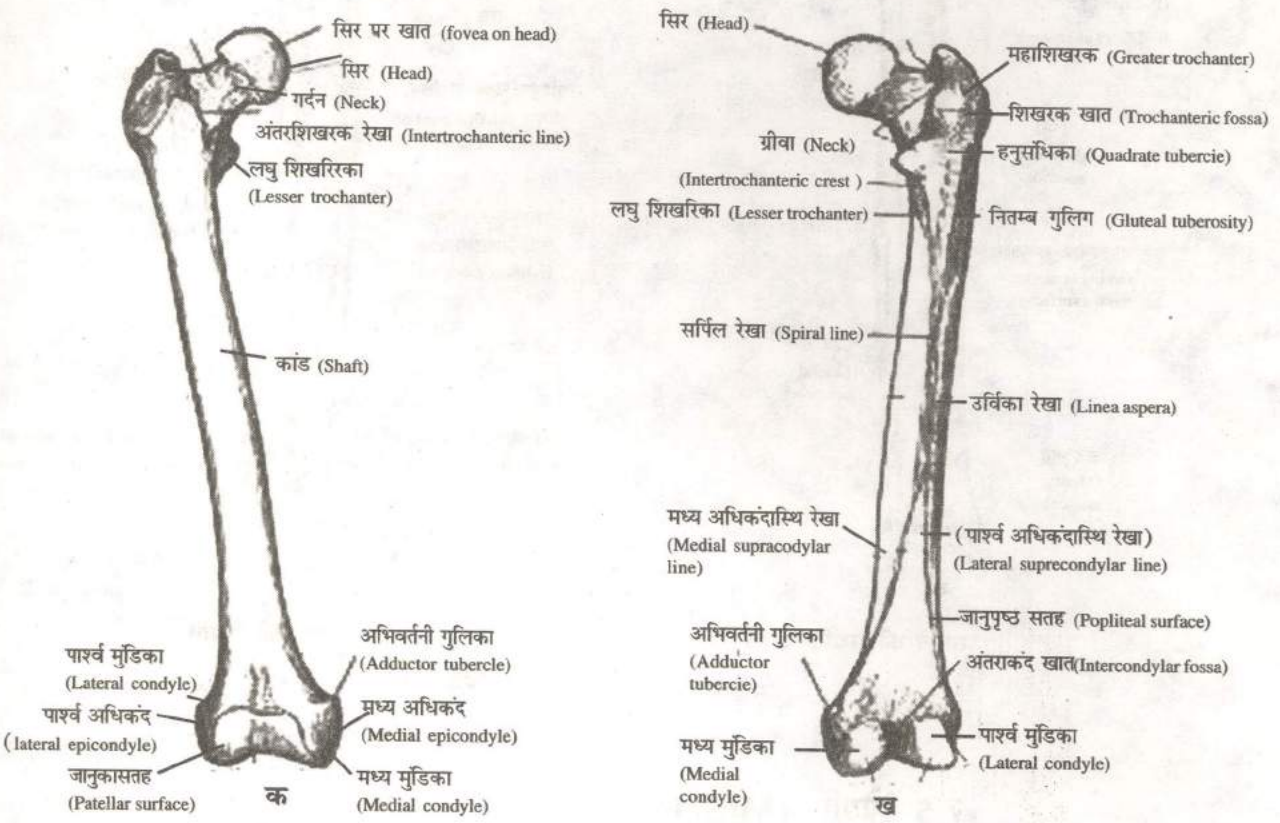

दायीं उर्वस्थि (क) सामने की स्थिति

ख. पीछे की स्थिति

चित्र 7.5

कटि में 60, पृष्ठ में 80, पार्श्वो में 60 और उर में 30 स्नायु होते हैं। ग्रीवा में 36 और मूर्धा (Head) में 34 स्नायु होते हैं। इस प्रकार उर्ध्वजत्रुगत 70 स्नायु होते हैं। वृहत स्नायु को कण्डरा कहते हैं।

स्नायु चार प्रकार के होते हैं प्रतानवती (Branched), वृत्ता (circular), पृथु (flat) और सुषिरा (porous)। सभी शाखाओं तथा सन्धियों में प्रतानवती होते है। सभी गोल स्नायुओं को कण्डरा कहते हैं। सुषिरा (porous) स्नायु आमाशय और पक्वाशय के अन्त भाग पर तथा बस्ति प्रदेश में होते हैं। जबकि पृथु (flat) स्नायु पार्श्व, छाती, पृष्ठ और शिर में होते हैं। शरीर में भी जितनी सन्धियां हैं वे बहुत से स्नायुओं से बंधी हुई होती हैं जिसके कारण मनुष्य भार वहन करने में समर्थ है।

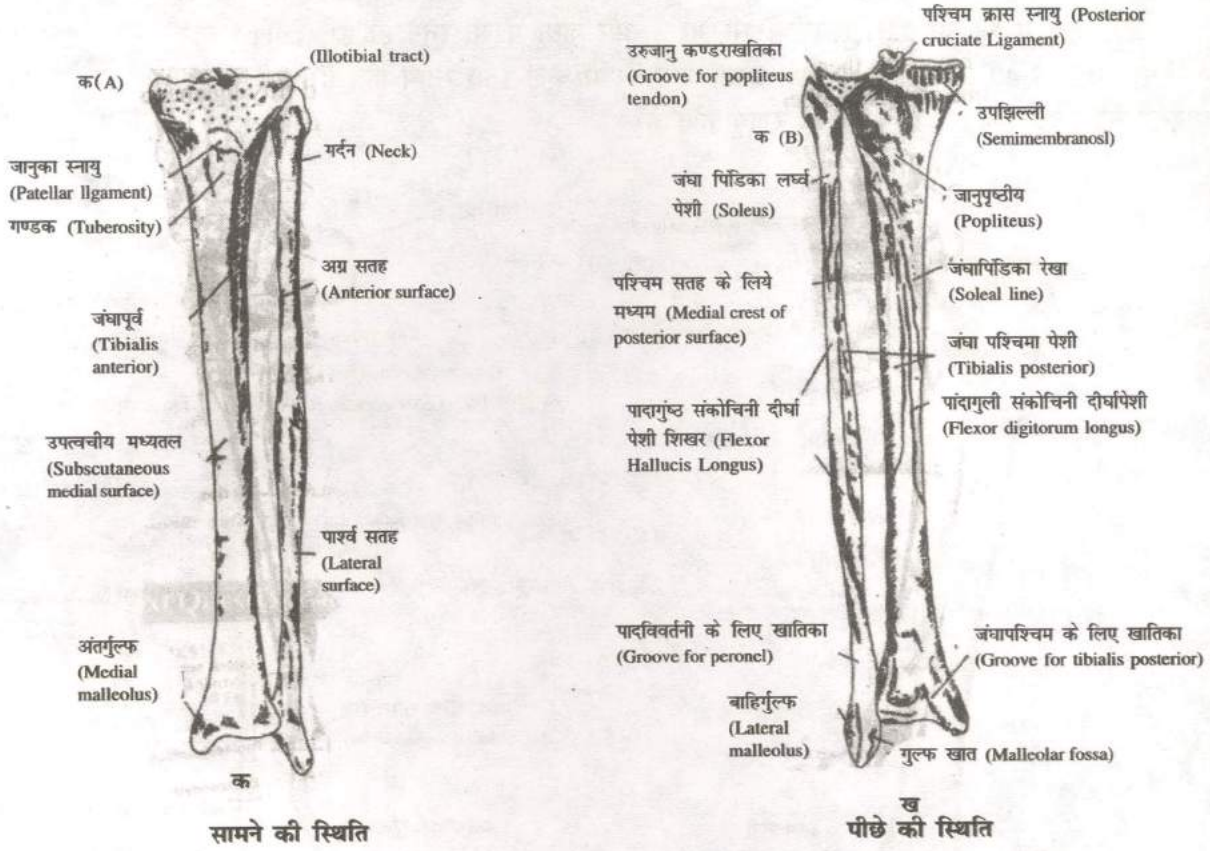

चित्र 7.6 अंतर्जंघास्थि

7.5 पेशी (Muscle)

पेशियाँ पाँच सौ होती हैं। उनमें से शाखाओं में चार सौ, कोष्ठ में 66 और गर्दन के ऊपर 34 होती हैं। प्रत्येक पैर की अंगुली में तीन-तीन और इस प्रकार पाँचों अंगुलियों में पन्द्रह पेशियां होती हैं। प्रपाद (Forepart of foot) में 10, पैर के ऊपर कूर्च में सटी हुई 10, गुल्फतलों में 10, गुल्फ और जानु के बीच में 20, जानु में 5, उरूप्रदेश (thigh) में 20, वंक्षण में 10 और इस प्रकार, प्रत्येक पैर में 100 पेशियां होती हैं। इस प्रकार दूसरे पैर में और दोनों हाथों में भी समान संख्या में पेशियां होती हैं।

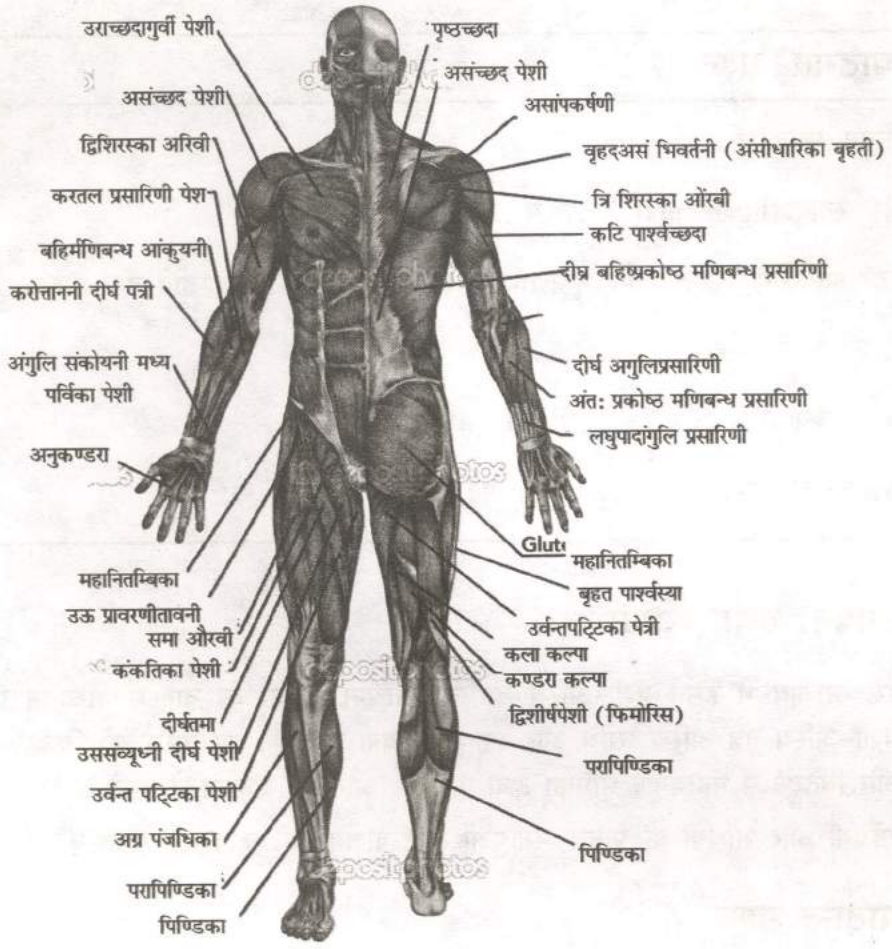

चित्र 7.7: शरीर की मांसपेशियां

कोष्ठगतपेशियाँ- गुदद्वार में तीन, मूत्रेन्द्रिय में एक, सेवनी में एक, अण्डकोषों में दो, प्रत्येक नितम्ब में पाँच, वस्तिशीर्ष में दो, उदर में पाँच, नाभि में एक, पीठ के उर्ध्व भाग में सटी हुई दीर्घ पांच पेशियाँ होती हैं।

पार्श्व में छः, वक्षस्थल में दस, अक्षक और अंस (clavicle and shoulder) के चारों ओर सात हृदय और आमाशय में दो, यकृत, प्लीहा और उण्डुक में छः पेशियां होती है। ग्रीवा में चार, हनुओं (jaws) में आठ, काकलिका और गले में एक-एक, तालु में दो, जिह्वा में एक होंठ, नाक और आंखों में दो-दो, गाल में चार, कानों में दो, ललाट में चार, शिर में एक पेशी होती हैं।

शरीर में सिरा, स्नायु, अस्थियाँ, पर्व तथा सन्धियाँ पेशियों से आच्छादित हैं। इस कारण वे दृढ़ होती हैं। स्त्रियों में बीस पेशियां अधिक होती हैं। इनमें से प्रत्येक स्तन में पांच-पांच पेशियाँ होती हैं उनकी यौवनावस्था में वृद्धि होती हैं।

अपत्यमार्ग (Vaginal tract) में चार मांसपेशियां होती हैं। गर्भछिद्र (Uterine tract) के आश्रित तीन पेशियां होती हैं। शुक्र और आर्तव को प्रवेश कराने वाली तीन पेशियाँ होती हैं।

पाठगत प्रश्न 7.2

रिक्त स्थान भरें

1. स्नायु (ligaments) संख्या में ..... होते हैं।
2. आमाशय, आन्त्रों और मूत्राशय के अन्त में ..... होते हैं।
3. पेशियाँ संख्या में ..... हैं।
4. स्त्रियों में ..... पेशियाँ अधिक होती हैं।
5. वृहत स्नायु ..... कहलाते हैं।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने पेशी-अस्थि तंत्र के विभिन्न घटकों के बारे में अध्ययन किया। यह पेशी-अस्थि तंत्र अस्थि, संधि और स्नायु का बना होता है। यह शरीर की क्रियाविधि, गमन, और वितरण में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है और इस अध्याय में हमनें अस्थियों के प्रकार, संधियाँ और संधियों के प्रकार, स्नायुओं और पेशियों की जानकारी प्राप्त की है।

पाठान्त प्रश्न

1. अस्थियों के प्रकारों का वर्णन करें।
2. संधियों की संख्या और इसके प्रकारों के बारे में लिखें।
3. स्नायु के वितरण पर विचार व्यक्त करें।
4. पेशियों के वितरण पर विचार व्यक्त करें।
5. पेशी के प्रकारों का वर्णन करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

7.1 1. शाखाओं

2. कपाल अस्थि
3. आठ
4. संधियों

7.2 1. 900

2. सुषिर स्नायु

3. 500

4. 20

5. कण्डरा

सुझाई गई गतिविधि

- अस्थियों एवं संधियों का चार्ट बनाएं।
- विभिन्न संधियों के उदाहरण दीजिए।
- आप अपनी संधियों की समीक्षा करें जो आपने इस पाठ से सीखी है।

8

मर्म विज्ञान

मर्म शरीर के बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं। जब इन पर आघात होता है तो बहुत सारी जटिलताएं, अंगविकृति और मृत्य तक हो सकती है। इन स्थानों को बाह्य आघात और शल्य कर्म से बचाना चाहिए। जब इन स्थानों की विभिन्न विधियों से चिकित्सा की जाती है तो शरीर की ऊर्जा बढ़ जाती है और बहुत सारे रोगों को ठीक किया जा सकता है। यह मर्म ज्ञान, पंचकर्म और मर्म चिकित्सा में सहायक होता है।

उद्देश्य

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:-

- मर्म की परिभाषा;
- मर्म के प्रकार;
- मानव शरीर पर मर्म बिन्दुओं के स्थानों की पहचान;
- मर्म बिन्दुओं का श्रेणी विभाजन;
- मर्म स्थानों पर आघात का प्रभाव।

8.1 मर्म

हमारे शरीर में पाये जाने वाले मर्म बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं और जब ये चोटग्रस्त होते हैं तो बहुत सारी जटिलताएं, अंगविकृति और मृत्यु तक हो सकती है। इन स्थानों को बाह्य आघात और शल्य कर्म से बचाना चाहिए।

मानव शरीर में मर्म बिन्दुओं का वर्णन-

आचार्य सुश्रुत के अनुसार मानव शरीर में 107 मर्म हैं। ये शरीर के अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान

हैं। इन स्थानों पर कोई चोट (आघात) लगने पर तीव्र दर्द, अंगविकृति, अंगों के कार्य करने में कमी, संवेदना का नाश और मृत्यु भी हो सकती है।

क्र. सं.	मर्म का नाम	स्थान	संख्या	प्रभाव	प्रकार
1.	क्षिप्र (प्रथम अंगुष्ठ व प्रथम अंगुली के मध्य)	ऊर्ध्वशाखा	2	कालांतर प्राणहर (घातक)	स्नायु मर्म
2.	क्षिप्र (प्रथम पाद अंगुष्ठ व प्रथम अंगुली के मध्य)	अधोशाखा	2	कालांतर प्राणहर	स्नायु मर्म
3.	तलहृदय	उर्ध्वशाखा	2	कालांतर प्राणहर	पेशी मर्म
4.	तलहृदय	अधोशाखा	2	कालांतर प्राणहर	पेशी मर्म
5.	कूर्च (हाथ की अंगुलियों के मध्य-स्नायु)	ऊर्ध्वशाखा	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
6.	कूर्च (पैर की अंगुलियों के मध्य-स्नायु)	अधोशाखा	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
7.	कूर्चाशिर (मणिबंध संधि के बाईं तरफ)	ऊर्ध्वशाखा	2	पीड़ादायक	स्नायु मर्म
8.	कूर्चाशिर (गुल्फ संधि के बाईं तरफ)	अधोशाखा	2	पीड़ादायक	स्नायु मर्म
9.	मणिबन्ध (wrist joint)	ऊर्ध्वशाखा	2	पीड़ादायक	संधि मर्म
10.	गुल्फ (Ankle joint)	अधोशाखा	2	पीड़ादायक	संधि मर्म
11.	इन्द्रबस्ति (origin of palmaris longus muscle)	ऊर्ध्वशाखा	2	कालांतर में घातक	पेशी मर्म
12.	इन्द्रबस्ति (calf muscles)	अधोशाखा	2	कालांतर में घातक	पेशी मर्म
13.	कूर्पर (Elbow joint)	ऊर्ध्वशाखा	2	अंग विकृति	संधि मर्म
14.	जानु (Knee joint)	अधोशाखा	2	अंग विकृति	संधि मर्म
15	अणि (Tendon of bieceps muscle)	ऊर्ध्वशाखा	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
16.	अणि (Tendon of quadriceps femoris muscle)	अधोशाखा	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
17.	उर्वी (Brachial artery Bacilic vein)	ऊर्ध्वशाखा	2	अंग विकृति	सिरा मर्म
18.	उर्वी (Femoral vessels)	अधोशाखा	2	अंग विकृति	सिरा मर्म
19.	कक्षाधर (Brachial plexus)	ऊर्ध्वशाखा	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
20.	विटप (Inguinal canal Ligament)	उदर	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
21.	लोहिताक्ष (Axillary vesseles)	ऊर्ध्वशाखा	2	कालान्तर में घातक	सिरा मर्म
22.	लोहिताक्ष (Femoral vessels)	अधोशाखा	2	कालान्तर में घातक	सिरा मर्म
23.	गुद (Anal canal & Anus)	उदर	1	घातक	पेशी मर्म
24.	बस्ति (Urinary bladder)	उदर	1	घातक	स्नायु मर्म
25.	नाभि (Umblicus)	उदर	1	घातक	सिरा मर्म
26.	स्तनमूल (Internal mammary vessel)	वक्ष	2	कालांतर में घातक	सिरा मर्म
27.	हृदय (Heart)	वक्ष	1	घातक	सिरा मर्म
28.	स्तन रोहित (lower portion of Pectoralis major muscle)	वक्ष	2	कालांतर में घातक	पेशी मर्म

29.	अपलाप (Lateral thoracic and suprascapular vessel)	वक्ष	2	कालांतर में घातक	सिरा मर्म
30.	अपस्तम्भ (Two Bronchii)	वक्ष	2	कालांतर में घातक	सिरा मर्म
31.	कटिक तरूण (sciatic notch)	पृष्ठ	2	कालांतर में घातक	अस्थि मर्म
32.	नितम्ब (Ischial tuberosity)	पृष्ठ	2	कालांतर में घातक	अस्थि मर्म
33.	कुकुन्दर (Sacroiliac Joints)	पृष्ठ	2	अंग विकृति	संधि मर्म
34.	पार्श्वसन्धि (Common iliac vessels)	पृष्ठ	2	कालांतर में घातक	सिरा मर्म
35.	बृहति (Subscapular & Transverse cervical arteries)	पृष्ठ	2	कालांतर में घातक	सिरा मर्म
36.	अंसफलक (spine of scapula)	पृष्ठ	2	अंग विकृति	अस्थि मर्म
37.	अंस (Trapezius muscle)	पृष्ठ	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
38.	कृकाटिका (Atlanto-occipital articulation)	ग्रीवा	2	अंग विकृति	संधि मर्म
39.	नीला (Blood vessels of the neck)	ग्रीवा	4	अंग विकृति	सिरा मर्म
40.	मातृका (Blood vessels of the Neck)	ग्रीवा	8	घातक	सिरा मर्म
41.	विधुर (Posterior auricular ligament)	शिर	2	अंग विकृति	स्नायु मर्म
42.	फण (olfactory region of the Nose)	शिर	2	अंग विकृति	सिरा मर्म
43.	अपांग (Zygomatico-temporal vessels)	शिर	2	अंग विकृति	सिरा मर्म
44.	आवर्त (Junction of the Frontal, molar & sphenoid bone)	शिर	2	अंग विकृति	संधि मर्म
45.	उत्क्षेप (Temporal muscle & fascia)	शिर	2	बाह्य शल्य निकालने के बाद घातक	स्नायु मर्म
46.	शंख (Temples)	शिर	2	घातक	अस्थि मर्म
47.	स्थपनी (Nasal arch of the frontal vein)	शिर	1	बाह्य शल्य निकालने के बाद घातक	सिरा मर्म
48.	सीमन्त (Cranial sutures)	शिर	5	कालान्तर में घातक	संधि मर्म
49.	श्रंगाटक (Cavernous and Intercavernous sinuses)	शिर	4	घातक	सिरा मर्म
50.	अधिपति (Torcular herophilia)	शिर	1	घातक	संधि मर्म

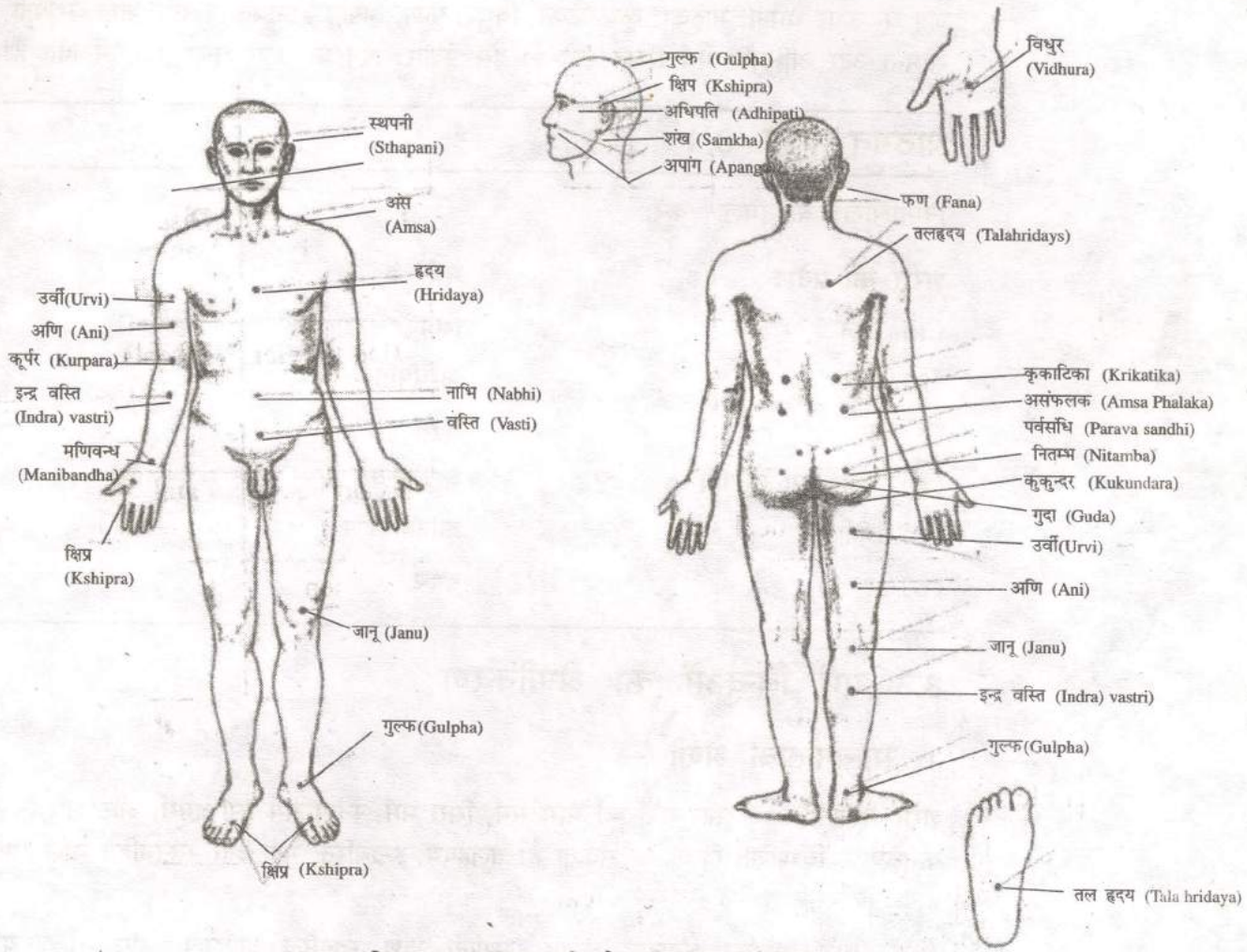

चित्र 8.1 : मानव शरीर में कुछ मुख्य मर्म बिंदु

8.2 मानव शरीर में मर्म बिन्दुओं का वितरण

इन 107 मर्मों में से 11 मर्म पैर में होते हैं। इसी प्रकार दूसरे पैर और दोनों बाहुओं में भी समान संख्या में मर्म होते हैं। अत: सब शाखाओं में कुल 44 मर्म होते हैं। पेट और छाती में 12, पीठ में 14 और इस प्रकार कोष्ठ में कुल 26 मर्म होते हैं। गर्दन और शिर में 37 मर्म हैं।

अधोशाखा में क्षिप्र, तलहृदय, कूर्च, कूर्चशिरा, गुल्फ, इन्द्रवस्ति, जानु, अणी, उर्वी, लोहिताक्ष, और विटप मर्म स्थित होते हैं। उर्ध्वशाखा में विटप मर्म के स्थान पर कक्षधरा मर्म होता हैं। कुल 44 मर्म होते हैं।

उदर और ऊरु में गुदा, बस्ति, नाभि, हृदय, दो स्तनमूल, दो स्तनरोहित, अपलाप (thorax) अपस्तम्भ मर्म होते हैं। यहां कुल 12 मर्म हैं।

पीठ में कटिकतरुण, कुकुन्दर, नितम्ब, पार्श्वसन्धि, बृहती, अंसफलक और अंस मर्म स्थित हैं। इस प्रकार पृष्ठ मर्म कुल 14 हैं।

जत्रु के ऊपर धमनी, मातृका, कृकाटिका, विधुर, फण, अपाङ्ग., आवर्त, उत्क्षेप, शंख, स्थपनी, सीमन्त और अधिपति मर्म स्थित होते हैं। इस प्रकार गर्दन के ऊपर कुल 37 मर्म होते हैं।

पाठगत प्रश्न 8.1

निम्नलिखित का मिलान करें:

शरीर का प्रदेश	मर्म
(1) गर्दन	क्षिप्र
(2) उदर	अधिपति
(3) पृष्ठ	नाभि
(4) सभी चारों शाखायें	कृकाटिका
(5) छाती	कटिकतरुण
(6) शिर	हृदय

8.3 मर्म बिन्दुओं का श्रेणीकरण

1. संरचनात्मक श्रेणी -

शरीर संरचना के अनुसार मर्मों को मांस मर्म, सिरा मर्म, स्नायु मर्म, सन्धिमर्म, और अस्थिमर्म के रूप में विभाजित किया जा सकता है। तलहृदय, इन्द्रबस्ति, गुदा और स्तनरोहित **मांस मर्म** हैं।

नीला, धमनी, मातृका, श्रृंगाटक, अपांङ्ग., स्थपनी, फण, स्तनमूल, अपलाप, अपस्तम्भ, हृदय, नाभि, पार्श्वसन्धि, बृहती, लोहिताक्ष, और उर्वी **सिरा मर्म** हैं।

अणि, विटप, कक्षधरा, कूर्च, कूर्चाशिरा, बस्ति, क्षिप्र, अंस, विधुर और उत्पेक्ष **स्नायु मर्म** हैं।

कटिकतरुण, नितम्ब, अंसफलक और शंख **अस्थि मर्म** हैं।

जानु, विटप, सीमन्त, अधिपति, गुल्फ, मणिबन्ध, कुकुन्दर, आवर्त और कृकाटिका **सन्धिमर्म** हैं।

2. शरीर क्रियात्मक श्रेणी -

शरीर क्रियात्मक गुणों के आधार पर इन्हें सौम्य, वायव्य, आग्नेय, और सौम्य-आग्नेय, चार श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। सद्यः प्राणहर मर्म आग्नेय होते हैं। इन मर्म स्थानों पर आघात (चोट) लगने से जैविक क्रिया में कमी आती है और मृत्यु हो सकती है। कालान्तर प्राणहर मर्म सौम्य आग्नेय होते हैं। अग्नि गुण शीघ्र कम होने से और सौम्य गुण धीरे-धीरे कम होने के कारण ये मर्म कालान्तर (delayed) से प्राण ले लेते हैं। शल्य प्राणहर मर्म वे होते हैं जो बाह्य शल्य के शरीर में रहने पर घातक नहीं होते है। लेकिन बाह्य शल्य के निकालने से शरीर के लिए घातक होते हैं। ये मर्म वायव्य प्रधान होते हैं। इन मर्मों के मुख में शल्य के होने से जब तक वायु रुकी रहती है तब तक प्राणी जीवित रहता है। किन्तु शल्य निकालने

मात्र से मर्मस्थान से वायु निकल जाती है और प्राणी मृत्यु को प्राप्त होता है। लेकिन अगर बाह्य शल्य नहीं निकाला जाता है और व्रण का पाक होकर शल्य निकल जाय तो मर्म घातक नहीं होता और व्यक्ति जीवित रहता है।

वैकल्यकर मर्म सौम्य गुण वाले होते हैं। सोम स्थिर होने के कारण एवं शीत प्राणों का अवलम्बन करता है। इन स्थानों पर आघात (चोट) लगने पर ये घातक नहीं होते हैं लेकिन ऐसे में विकलांगता उत्पन्न हो सकती हैं। रुजाकर मर्म अग्नि और वायु गुणयुक्त होते हैं। इन मर्मों पर आघात होने से ये मर्म तीव्र पीड़ा देते हैं।

3. स्थानकृतिक मर्मों की श्रेणियाँ

स्थान के अनुसार, मर्म, वक्ष एवं उदर (thorax and abdomen), पृष्ठ (back), शाखा (Extermities) और उर्ध्वजत्रु (Supraclavicular) प्रदेश में स्थित होते हैं।

मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि और सन्धि के संयोजन को मर्म कहते हैं। इनको जीवनस्थान और प्राणायतन भी कहते हैं। मर्म का यह विचार सभी मार्शल आर्ट और एक्यूपन्चर/एक्यूप्रेशर/संज्ञानाश का आधार है। सुश्रुत संहिता के अनुसार मांस मर्म के आघात के कारण स्पर्शज्ञान का नाश हो सकता है। इसके ज्ञान के प्रयोग द्वारा, मांस मर्म को उत्तेजित करके स्थानीय संज्ञानाश उत्पन्न किया जा सकता है।

4. आघात के प्रभाव के अनुसार मर्म का श्रेणीकरण -

आघात के प्रभाव के आधार पर इन मर्मों को 5 समूहों में विभाजित किया जा सकता हैं।

- सद्य प्राणहर मर्म (Fatal) — 19
- कालान्तर प्राणहर मर्म (delayed fatal) — 33
- विशल्यघन मर्म (fatal removal of foreign body) — 03
- वैकल्यकर मर्म (disabling) — 44
- रुजाकर मर्म (painfull) — 08

यह कहा जा चुका है कि मर्मों में सभी पाँचों आधारभूत शारीरिक तत्व होते हैं, सद्यःप्राणहर मर्म सिरा, स्नायु, पेशी, अस्थि और संधियां सभी संयोजित होते हैं।

कालान्तर प्राणहर मर्म एक कम अर्थात चार रचना के मेल से होते हैं या पाँचों रचना अल्प प्रकार से मिलने से कालान्तर प्राणहर मर्म होते हैं। पाँचों में से दो कम अर्थात तीन रचना का संयोग होने से विशल्यघन प्राणहर मर्म होते हैं। तीन कम मर्मों का अर्थात दो का संयोग होने से वैकल्यकर मर्म होते हैं। सिर्फ एक ही प्रकार रचना का होना यह रुजाकर मर्म है।

श्रृंगाटक, अधिपति, शंख, मातृका, गुदा, हृदय, बस्ति और नाभि ये 19 सद्यःप्राणहर मर्म हैं। इन स्थानों पर आघात लगने पर मृत्यु हो सकती है।

स्तनमूल, स्तनरोहित, अपलाप, अपस्तम्भ, सीमान्त, तलहृदय, क्षिप्र, इन्द्रबस्ति, कटिकतरुण, पार्श्वसंधि, बृहती और नितम्ब ये कालान्तर प्राणहर मर्म होते हैं।

उत्क्षेप और स्थपनी मर्म विशल्यघन मर्म होते हैं जिनमें शल्य रहने तक प्राण रहते हैं किन्तु शल्य निकालने पर मृत्यु होती है।

लोहिताक्ष, जानु, उर्वी, कूर्च, विटप, कूर्पर, कुकुन्दर, कक्षाधर, विधुर, कृकाटिका, अंस, अंसफलक, अपांग. नील, मन्या, फण ओर आवर्त से 44 वैकल्यकर मर्म है। इन पर आघात लगने से विकलांगता उत्पन्न होती है।

गुल्फ, मणिबन्ध, कूर्चशिर ये आठ मर्म रुजाकर हैं। इन मर्मों पर आघात से तीव्र पीड़ा होती है। मांस, सिरा, स्नायु अस्थि, और संधि का सम्मिलित संयोग मर्म है। ये मर्म स्वाभाविक रूप से जीवन रक्षक बिन्दु हैं।

वाग्भट के अनुसार वे स्थान जहाँ पर आघात लगने से विभिन्न प्रकार की पीड़ा और कंपन हो, वे मर्म कहलाते हैं।

पाठगत प्रश्न - 8.2

(i) एक पैर में मर्मों की संख्या ..... है।

(ii) उर्ध्वजत्रु के ऊपर स्थित मर्म ..... हैं।

(iii) मनुष्य शरीर में ..... मर्म होते हैं।

(iv) मांस, सिरा, स्नायु, अस्थि, संधि का सम्मिलित सम्बन्ध ..... कहलाता है।

(v) वैकल्यकर मर्म संख्या में ..... होते हैं।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने जाना कि मर्म हमारे शरीर में पाये जाने वाले बहुत महत्वपूर्ण स्थान हैं। जब इन पर आघात होता है तो बहुत सारी जटिलताएं विकलांगता एवं मृत्यु हो सकती है। इन स्थानों को आघात और शल्य कर्मों से बचाना चाहिए। हमने यह भी जाना कि इनकी संख्या, शरीर में इनका स्थान कहां-कहां है और हमने संरचनात्मक, देश और क्रियाशारीरिक विभाजन तथा मर्म स्थानों पर चोट (आघात) के प्रभाव का भी अध्ययन किया।

पाठान्त प्रश्न

1. घातकता के आधार पर मर्म के प्रकारों का वर्णन करें।

2. सद्योप्राणहर मर्म के गुणों का वर्णन करें।

3. शरीर रचना की बनावट के साथ महत्वपूर्ण मर्मों की तुलना करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

8.1 (क) 4

(ख) 3

(ग) 5

(घ) 1

(ड.) 6

(च) 2

8.2 (i) ग्यारह

(ii) सैत्तीस (37)

(iii) एक सौ सात (107)

(iv) मर्म

(v) चौवालीस - 44

सुझाई गई गतिविधि

आप अपने शरीर पर विभिन्न मर्मो (बिन्दुओं) को पहचानें तथा उन मर्म स्थानों का चित्र बनाएं।

9

रोग के निदान

आयुर्वेद संसार की सर्वाधिक प्राचीन चिकित्सा पद्धतियों में से एक है। आयुर्वेद के अनुसार समस्त व्याधियों का प्राथमिक कारण मनुष्य और उसे पर्यावरण के बीच असामञ्जस्य है अर्थात अर्थात लोक और पुरुष। मूल रूप से लोक-पुरुष के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया तीन कारकों के स्तर पर होती है यथा–काल/समय कारक और इसके प्रभाव, बुद्धि/व्यक्ति का विवेक और इंद्रियार्थ/पांच ज्ञानेन्द्रियां। स्वस्थ जीवन के लिए इन तीनों का प्रकृति रूप में रहना महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इनकी विकृति ही समस्त व्याधियों का प्राथमिक कारण हैं।

इस अध्याय में व्याधि का सामान्य स्वरूप, निदान के भेद, रोग के भेद, रोग के स्थान एवं आयुर्वेद में औपसर्गिक रोगों की अवधारणा/स्वरूप की प्रस्तुति की गई है।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:-

- रोगों की उत्पत्ति के मूल स्वरूप को समझ सकेंगे।
- रोगों के प्राथमिक/मूल कारणों को जान पायेंगे।
- निदान के भेद कर सकेंगे।
- रोगों के भेद के तरीके सीख सकेंगे।
- औपसर्गिक रोगों के फैलने के तरीकों को जान सकेंगे।

9.1 रोग की मौलिक अवधारणा

आयुर्वेद ने 'स्वभावोपरमवाद' का सिद्धांत प्रतिपादित किया है। इसके अनुसार मनुष्य में स्वयं स्वस्थ होने तथा रोगों से ठीक होने की प्राकृतिक क्षमता होती है। प्रकृति विकृति से अधिक महत्त्वपूर्ण है। प्राकृतिक जीवन प्रक्रिया हमेशा यह कोशिश/प्रयास करती है कि विकृति से प्राकृतिक स्थिति में फिर से स्वस्थ अवस्था को लाया जाये। रोग को ठीक करने के लिए भिषक्

व औषध द्रव्य की आवश्यकता नहीं होती है, अगर उनकी जरूरत होती भी है तो वो केवल प्रकृति के स्वयं ठीक होने की प्रक्रिया में सहायक होती है।

इसके अतिरिक्त, आयुर्वेद लोक-पुरुष साम्य के मूलभूत सिद्धांत पर बल देता है जो व्यक्ति की प्रक्रिया का ब्रह्माण्ड या वातावरण के साथ समन्वय का सुझाव देता है। वास्तविक रूप से यह मानता है कि प्राणी ब्रह्माण्ड का प्रतिबिम्ब रूप है। पुरुष और प्रकृति का यह लगातार टकराव प्राणी के स्वस्थ अवस्था को बनाये रखने में जिम्मेदार होता है। जब पुरुष और प्रकृति के बीच का सामञ्जस्य बिगड़ जाता है तो यह स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न रोगों को उत्पन्न करता है। प्राकृतिक प्रतिरोधक शक्ति के अधिक साधन और शरीर प्रतिरोधक क्षमता (व्याधि क्षमत्व) के बावजूद लोग विभिन्न प्रकार के शारीरिक और मानसिक विकारों से पीड़ित हो जाते हैं।

आयुर्वेद की धारणा है कि रोग, दोष, धातु और मलों के असंतुलन की अवस्था है। यहां दोषों से शरीर तरल पदार्थ, धातु से उत्तकीय घटक एवं मल से उत्सर्जित उत्पाद लिये जाते हैं। रोगों की अन्तिम अवस्था मुख्यत: रोगों के अधिष्ठान (रोगों का वास्तविक स्थान) से प्रभावित होती है।

मूलभूत रोगोत्पत्ति निदान के आधार पर आयुर्वेद में रोगों की कल्पना अलग भी की गयी है। यह वह अवस्था है जहां रोग पिछले जन्म के कर्मों के फलस्वरूप हो सकते हैं। कर्मज व्याधि के प्रकरण में यह आनुवांशिक और जन्मजात विकार होते हैं, इसका कोई दूसरा कारण नहीं मिलता है और इस प्रकार की व्याधि में युक्तिव्यापाश्रय चिकित्सा से सामान्यत: कोई प्रतिक्रिया नहीं मिलती है। युक्तिव्यापाश्रय चिकित्सा के अंतर्गत आहार, औषध और दूसरे चिकित्सकीय साधन आते हैं। कर्मज व्याधि में दैव-व्यापाश्रय चिकित्सा से प्रतिक्रिया हो सकती है। दैव-व्यापाश्रय चिकित्सा व्यापाश्रय के अंतर्गत मंत्र, जप, तप और मणि धारण आते हैं। कर्मज व्याधि के अतिरिक्त मनुष्य कुछ आगन्तुज व्याधियों से भी पीड़ित हो सकते हैं। ये व्याधियां मनुष्य और उसके वातावरण के बीच अनुचित संबंध के फलस्वरूप उत्पन्न मानी जा सकती है।

आयुर्वेद में और भी रोगों का उल्लेख है जैसे–

- **अधिभौतिक**–त्रिदोष, रज एवं तम से उत्पन्न व्याधि।
- **अधिदैविक**–आगन्तुक कारणों से उत्पन्न व्याधि।
- **आध्यात्मिक**–प्राकृतिक शक्ति से उत्पन्न व्याधि।

लोक और पुरुष तीन मूल कारकों के माध्यम से कार्य करते हैं:

1. **काल**–समय/ऋतुओं का क्रम।
2. **बुद्धि**–ज्ञान (विचार शक्ति)।
3. **इन्द्रियार्थ**– इन्द्रियों के विषय।

काल, बुद्धि, इन्द्रियार्थ का प्रकृति रूप में रहना समयोग कहलाता है जो कि व्यक्ति की स्थिति के लिए आवश्यक है। इनका उपयोग, अतियोग एवं मिथ्यायोग विभिन्न व्याधियों को उत्पन्न करने में महत्त्वपूर्ण है।

1. प्रभावित - जरूरी।
2. समानता - एकता।
3. सम्भालना - बनाये रखना।
4. निदान - रोग का कारण।
5. अस्वास्थ्यकर - अनुपयुक्त।
6. रोगजनन प्रक्रिया।

काल परिणाम–

समय गति/मौसम एक महत्वपूर्ण स्वास्थ्य जोखिम कारक है। यह आदान काल–शरीर बल शोषण का समय एवं विसर्गकाल–शरीर के पोषण का समय षडऋतु और दिनचर्या के रूप में वर्णित है। ये मनुष्य के जैविक तंत्र के समय को प्रभावित करके ढेर सारे शरीर क्रियात्मक बदलाव उत्पन्न करते हैं। दोषों की सामान्य कर्म प्रक्रिया विभिन्न समय कारकों के साथ नीचे सारणी में दर्शाई गई है।

काल कारक	वात प्रकोप	पित्त प्रकोप	कफ प्रकोप
प्रमुख ऋतु	वर्षा	शरद	बसन्त
दिनचर्या परिवर्तन	दोपहर पश्चात (सायंकाल) और प्रदोष काल में	मध्याह्न और मध्यरात्रि	दिन के पूर्वभाग (प्रातःकाल) और सूर्यास्त के पश्चात्
आयु	वृद्धावस्था	युवावस्था	बाल्यावस्था
आहार	आहार के पूर्ण पक्व होने के पश्चात	आहार पाक के दौरान	आहार को लेने के तुरन्त बाद

दोषिका : विभिन्न ऋतुओं के सम्बन्ध में दोषों की स्थिति एवं विकार

क्र.स.	ऋतु	दोषों की स्थिति एवं विकार
1.	शिशिर	कफ संचय।
2.	बसन्त	कफ प्रकोप–प्रतिश्याय, कास, दमा (श्वास) जैसी व्याधियां।
3.	ग्रीष्म	कफ प्रशमन, वातसंचय।
4.	वर्षा	पित्त संचय, वात प्रकोप–संधिगत वात कामला, अतिसार जैसी व्याधियां।
5.	शरद	वात प्रशमन, पित्त प्रकोप, पैत्तिक व्याधियां–उच्च रक्तचाप, त्वक् दोष, ज्वर आदि।
6.	हेमन्त	कफ संचय, पित्त प्रशमन।

प्रज्ञापराध–

व्याधि उत्पत्ति में यह द्वितीय मौलिक/मुख्य कारण है। व्यक्ति की, बुद्धि, वाक् एवं शरीर की अनुचित क्रिया के परिणामस्वरूप प्रज्ञापराध होता है। सूचनात्मक रोगों के प्रकार और मानसिक विकार प्रज्ञापराध के परिणाम है।

इसके अतिरिक्त, यह अन्य रोगों को भी उत्पन्न करता है। जैसे–

- शारीरिक व्याधि
- दुर्घटना/आघात
- उपसर्ग (संक्रमण)
- अस्वस्थ आदतें
- नशाखोरी

असात्म्येन्द्रियार्थ संयोग

यह व्याधि का तृतीय मौलिक (मुख्य) कारण है। पांच इंद्रियों यथा श्रोत, घ्राण, चक्षु, त्वचा और जिह्वा के अयोग, अतियोग, मिथ्या-योग के कारण एक तनाव की अवस्था पैदा होती है जो प्रत्यक्ष रूप से व्याधि उत्पन्न करती है या व्यक्ति को विभिन्न व्याधियों से ग्रसित कर देती है।

ज्ञानेन्द्रियों के विषयों के साथ तनावयुक्त संबंध के प्रभाव का उदाहरण–

1. श्रवण कर्म की क्षीणता से सुनने के विकार उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे–बहरापन, कम सुनाई देना एवं कान में आवाज का सुनाई देना।
2. त्वक् ग्रहण की क्षीणता से स्पर्शज्ञान के विकारों के होने की सम्भावना रहती है जैसे–शून्यता, जलन, इत्यादि।
3. दर्शन क्षमता की क्षीणता से नेत्र रोग और दृश्य विकार उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे–नेत्रहीनता, कम दिखाई देना, नेत्र में सूखापन इत्यादि।
4. रस ग्रहण की क्षीणता से जिह्वा रोग उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे–स्वाद का नाश, रस ज्ञान में बदलाव, जिह्वा का सूखना इत्यादि।
5. घ्राण ग्रहण की क्षीणता से नासा और गंध ज्ञान के विकार उत्पन्न हो सकते हैं, जैसे–गंधनाश और गंधज्ञान में बदलाव, नाक में सूखापन इत्यादि।

9.2 निदान के भेद

आयुर्वेद में निदान का सूक्ष्म परीक्षण किया गया। निदान के बारे में संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है:

1. **सन्निकृष्ट**–ये कारण दोष संचय की अपेक्षा नहीं रखते। जैसे–दिन, रात आहार के पृथक-पृथक विभाग दोषों को कुपित करने में कारण है। ये सन्निकृष्ट हेतु है।
2. **विप्रकृष्ट**–ये कारण रोग उत्पन्न करने में समय लेते हैं। उदाहरण–हेमन्त ऋतु में श्लेष्मा का संचय होता है और वसन्त ऋतु में कफज व्याधियां अधिक होती हैं। अतः हेमन्त ऋतु में होने वाला कफ संचय विप्रकृष्ट हेतु है।
3. **प्राधानिक**–ये कारण बलवान होते हैं जो तुरन्त रोग को उत्पन्न कर देते है उदाहरण–विष।
4. **व्यभिचारी**–वे निदान जो कि निर्बल होते हैं और इनमें रोग उत्पन्न करने की क्षमता बहुत ही कम होती है। इस प्रकार के निदान को व्यभिचारी कहते हैं। कई बार ये निदान शरीर में रोग प्रतिरोधक क्षमता उत्पन्न करने में भी सहायक होते हैं।
5. **दोष हेतु**–जो हेतु दोषों को कुपित करके रोग उत्पन्न करें, वे हेतु इस वर्ग में सम्मिलित होते हैं।

- कटु, तिक्त, कषाय रसयुक्त अन्न एवं पेय पदार्थ वात दोष को कुपित करते हैं। अधारणीय वेगों के धारण से, अति व्यायाम, अति मैथुन, अति अध्ययन, काम, शोक, भय से भी वात दोष कुपित होता है।
- अम्ल, लवण, कटु रसयुक्त अन्न एवं पेय पदार्थ शरीर में पित्त दोष को कुपित करते हैं। क्रोध, शोक, भय, अप्राकृतिक मैथुन का अतिसेवन, अत्यधिक आतप सेवन भी पित्त प्रकोप में कारण है।
- मधुर, अम्ल, लवण रस युक्त आहार एवं पेय पदार्थ कफ दोष को कुपित करते हैं। दिन में अत्यधिक सोना, मैथुन का त्याग भी कफ प्रकोपक है।

6. **व्याधि हेतु**–वे हेतु जो कि निश्चित व्याधि को उत्पन्न करते हैं, इस वर्ग में रखे गये हैं। **यथा**–एक व्यक्ति जो मिट्टी खाने की आदत से पीड़ित होता है, उसे आन्त्र कृमि का संक्रमण हो जाता है। जब कोई व्यक्ति किसी संक्रमित व्यक्ति के संपर्क में आता है तो वह भी उसी रोग से संक्रमित हो जाता है।
7. **उभय हेतु**–वे हेतु जो दोष प्रकोपण के साथ-साथ विशेष व्याधि उत्पन्न करें, इस वर्ग में रखे गये हैं। **उदाहरण**–ऊंट या घोड़े पर सवारी वातप्रकोपक के साथ-साथ वातरक्त को भी उत्पन्न करती है।
8. **उत्पादक हेतु/व्यञ्जक हेतु**–वे हेतु जो निश्चित रूप से दोष प्रकुपित करें या व्याधि उत्पन्न करते हैं उत्पादक हेतु कहलाते हैं। इसके अतिरिक्त, जो हेतु लक्षणों/वेग की उत्पत्ति में सहायक हो व्यञ्जक हेतु कहलाते हैं। **यथा**–ठण्डे पानी का सेवन नासाशोथ का कारण होता है जो कि कफ का भी प्रकोप करता है। लेकिन इसमें सूर्य की किरणों के पड़ने से सिरदर्द बढ़ जाता है क्योंकि सूर्य की किरणों के पड़ने से कफ पिघल जाता है।
9. **बाह्य एवं आभ्यान्तर हेतु**–आहार, विहार एवं ऋतु परिवर्तन व्याधियों के बाह्य कारण माने गये हैं। इसके अतिरिक्त, दोष एवं दूष्य आभ्यान्तर हेतु है।

10. **प्राकृत-(स्वाभाविक काल)**–दिन एवं ऋतु के अनुसार दोषों का संचय, प्रकोप एवं प्रशमन होता है।
11. **वैकृत**–बिना स्वाभाविक काल के दोषों का संचय, प्रकोप एवं प्रशमन होना–जो विभिन्न व्याधियों की उत्पत्ति करते हैं।
12. **निदानार्थकर रोग**–सामान्यतः प्राकृतिक रूप से दोष प्रकोप से व्याधि उत्पन्न होती है जो कि उचित चिकित्सा या स्वभाव से शांत हो जाती है। यदि व्याधि ठीक नहीं होती है तो ये याप्य हो जाती है या रोगी के लिए दारुण सिद्ध होती है। लेकिन एक रोग से दूसरे रोग भी उत्पन्न हो सकते हैं इन्हें निदानार्थकर रोग भी कहते हैं।

9.3 रोग के भेद

आयुर्वेद में रोग के अनेक प्रकार से भेद किए गये हैं:

1. निमित्त भेद से रोग दो प्रकार के हैं:
   - **निज**–आंतरिक कारणों से उत्पन्न (अपनी धातु की विषमता से)।
     यथा–ज्वर, अस्थि रोग, मधुमेह, कास।
   - **आगन्तुज**–बाह्य (आगन्तुक) कारणों से उत्पन्न।
     यथा–आघातजन्य व्याधियां एवं औपसर्गिक व्याधियां।
2. चिकित्सकीय हस्तक्षेप के आधार पर रोग दो प्रकार के हैं:
   - **शस्त्र साध्य**–शस्त्रों के द्वारा चिकित्सा। **उदाहरण**–अर्श, भगन्दर, व्रण।
   - **स्नेहादि क्रिया साध्य**–औषध द्वारा चिकित्सा। **उदाहरण**–अस्थिरोग, त्वक् रोग।
3. प्रभाव के आधार पर रोगों का वर्गीकरण :
   - **साध्य**–जिनकी चिकित्सा की जा सकती है। **उदाहरण**–ज्वर, अतिसार, छर्दि।
   - **असाध्य**–जिनकी चिकित्सा नहीं की जा सकती है। **उदाहरण**–आमवात, (कैंसर)
   - **मृदु**–रोग का तनु/निर्बल स्वरूप। **उदाहरण**–प्रतिश्याय।
   - **दारुण**–रोग का गंभीर स्वरूप। **उदाहरण**–राजयक्ष्मा।
4. आश्रय भेद से रोग के दो प्रकार है :
   - **मानसिक**–मानस रोग। **उदाहरण**–उन्माद, अपस्मार।
   - **शारीरिक**–दोषज रोग। **उदाहरण**–ज्वर, श्वास।
5. आशय (समुत्थ्य) भेद से रोग दो प्रकार के है :
   - **आमाशय समुत्थ्य**–उर्ध्व आमाशय-आंत्र नलिका से उत्पन्न व्याधियां। **उदाहरण**–अम्लपित्त, ज्वर।
   - **पक्वाशय समुत्थ्य**–अधो आमाशय-आन्त्र नलिका से उत्पन्न व्याधियां। **उदाहरण**–ग्रहणी, अर्श (Piles)

6. दोषों के संबंधों के आधार पर पुनः रोगों को दो भागों में बांटा जा सकता है :

   1. **सामान्य विकार**–इनकी संख्या दोषों के अनेक संयोग के कारण 48 है। **उदाहरण**–कास, श्वास, राजयक्ष्मा, कुष्ठ इत्यादि।

   2. **नानात्मज विकार**–एक दोष के प्रकोप के आधार पर यह संख्या में 140 है। इनका वर्णन निम्नानुसार प्रस्तुत है:

      - **वातज**–उदाहरण–शारीरिक अंगों में शुष्कता, शरीर एवं इसके अंगों में शूल इत्यादि।
      - **पित्तज**–उदाहरण–ज्वर, दाह, अम्लपित्त इत्यादि।
      - **कफज**–गुरुता, अरुचि इत्यादि।

7. - **संतर्पणजन्य विकार**–ज्यादा कैलोरीयुक्त आहार का अधिक मात्रा में सेवन करने से उत्पन्न विकार। **उदाहरण**–प्रमेह, प्रेमह पिड़िका, पाण्डुरोग, ज्वर, कुष्ठ, अतिस्थौल्य (obesity) इत्यादि।
   - **अपतर्पणजन्य विकार**–कम कैलोरीमुक्त आहार का अतिमात्रा में सेवन करने से उत्पन्न। **उदाहरण**–अग्नि, बल, वर्ण, शुक्र, ओज, मांसक्षय, कास, अरुचि, उन्माद, हृदयरोग, संधिशूल।

9.4 आयुर्वेद में रोगों का वर्गीकरण–

क्र.स.	विभाजन का आधार	रोगों के भेद
1.	निमित्त	1. **निज**–आंतरिक कारणों से उत्पन्न। 2. **आगन्तुज**–बाह्य कारणों से उत्पन्न।
2.	चिकित्सकीय सहभागिता	1. **शस्त्र साध्य**–शस्त्र प्रयोग से साध्य। 2. **स्नेहादिक्रिया साध्य**–औषध प्रयोग से साध्य।
3.	प्रभाव	1. **साध्य**–चिकित्स्य। 2. **असाध्य**–अचिकित्स्य। 3. **मृदु**–रोग का निर्बल स्वरूप। 4. **दारुण**–रोग का गंभीर स्वरूप।
4.	आश्रय	1. **मानसिक**–मानस रोग। 2. **शारीरिक**–दोषज रोग।
5.	आशय (समुत्थ्य)	1. **आमाशय समुत्थ्य**–उर्ध्व आमाशय आन्त्र नलिका से उत्पन्न रोग। 2. **पक्वाशय समुत्थ्य**–अधो आमाशय आन्त्र नलिका से उत्पन्न रोग।

6.	दोषों की सम्बद्धता	1. **सामान्यज विकार**–सम्मिलित दोषों के रोग। 2. **नानात्मज विकार**–विशिष्ट दोष के रोग **यथा**–वात, पित्त कफ।
7.	अपूर्ण आहार	1. **सन्तर्पणजन्य विकार**–ज्यादा कैलोरीयुक्त आहार का अधिक मात्रा में सेवन करने से उत्पन्न। 2. **अपतर्पणजन्य विकार**–कम कैलोरीयुक्त आहार का अधिक मात्रा में सेवन करने से उत्पन्न।

इन नैदानिक कारकों के अतिरिक्त, सुश्रुत ने वर्णन किया है कि नैदानिक कारक स्वभाविक, या वातावरणीय हो सकते हैं। ये अकेले या सम्मिलित होकर रोग उत्पन्न करते हैं। जिनको निम्नलिखित सात श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है:

1. **आदिबल प्रवृत्ति**–इस वर्ग के अंतर्गत आने वाली व्याधियों की उत्पत्ति विशेष रूप से शुक्र (शुक्र एवं स्त्री शोणित) में विकृति से संबंधित है। त्वक्दोष, अर्श, श्वास, प्रमेह, स्थौल्य आदि व्याधियां इस वर्ग के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।

2. **दोष बल प्रवृत्ति**–ये रोग सामान्य रूप से दोष प्रकोप से होते हैं। जैसे–वात, पित्त, कफ, रज एवं तम। **उदाहरण**–अतिसार, पाण्डु, कामला आदि व्याधियां।

3. **जन्म बल प्रवृत्ति**–इस वर्ग के अंतर्गत गर्भावस्था में माता द्वारा किए गये अहित आहार विहार से उत्पन्न व्याधियों का समावेश है। **जैसे**–जन्मांधता, बाधिर्य, मूकता, मिन्मिनत्व एवं वामनत्व जैसी व्याधियां इसमें सम्मिलित हैं।

4. **संघात बल प्रवृत्ति**–इस वर्ग के अंतर्गत बाह्य एवं आभ्यान्तर आघातजन्य व्याधियां आती हैं। ये भी दो प्रकार की होती हैं:

   (i) **बाह्य आघातजन्य व्याधियां**–उदाहरण–अस्थि-सन्धि भग्न व च्युत, आन्त्रभेद व व्रण।

   (ii) जंगली जानवर एवं जहरीले सरीसृप के काटने से उत्पन्न व्याधियां–जलसंत्रास (hydrophobia), धर्नुवात (Tetanus) आदि।

5. **काल बल प्रवृत्ति**–इस वर्ग के अंतर्गत ऋतुओं के परिवर्तन/दूषित होने से उत्पन्न व्याधियों का समावेश है यथा–वायुमंडल में ताप, आर्द्रता आदि परिवर्तनों से उत्पन्न व्याधि–प्रतिश्याय, ज्वर, आमाशय-आन्त्रगत व्याधियां।

6. **दैवबल प्रवृत्ति**–इस रोग वर्ग में उन व्याधियों का समावेश होता है जिनकी उत्पत्ति उन कारणों से होती है जो मानव शक्ति से परे हैं। ये व्याधियां ईश्वर के द्वारा या दैवीय प्रकोप के कारण उत्पन्न मानी जाती हैं। **उदाहरण**–जनपदोध्वंस, सूखा, बाढ़, बिजली गिरना इत्यादि।

7. **स्वभाव बल प्रवृत्ति**–इस वर्ग में उन रोगों का अन्तर्भाव होता है जो शरीर, मन के स्वभाविक, जैविक और क्रियाशील परिवर्तनों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होते हैं। **उदाहरण**–बुढ़ापा, मृत्यु, पिपासा, निद्रा आदि।

9.5 आयुर्वेद में औपसर्गिक व्याधियों की अवधारणा

आयुर्वेद में, औपसर्गिक व्याधियों के बारे में सुश्रुत संहिता में वर्णन किया गया है। त्वक्‌रोग, विभिन्न ज्वर, राजयक्ष्मा, नेत्राभिष्यन्द (conjuctivitis) सामान्य औपसर्गिक व्याधियां बतायी गयी हैं। इन व्याधियों के नामकरण के अतिरिक्त, इनके फैलने के तरीके भी बताये गये हैं, जो कि निम्नलिखित हैं:

1. मैथुनजन्य संबंध–Sexual contact (मैथुनजन्य संबंध)
2. शरीर स्पर्श–Body contact (गात्रस्पर्श)
3. श्वास द्वारा अंदर खींचना–Inhalation (निःश्वास)
4. एक साथ सोना–Sleeping together in the same bed (सहशैय्या)
5. एक साथ खाना–Eating together (सहभोजन)
6. प्रयोज्य वस्त्र एवं मालाएं–Using the clothes, towels & cosmetics of others (वस्त्रमाल्यानुलेपनात्)

9.6 सामान्य औपसर्गिक व्याधियों के फैलने के माध्यम

क्र.स.	व्याधियों के फैलने के तरीके	औपसर्गिक व्याधियां
1.	प्रसङ्ग (Sexual contact)	एड्स (AIDS), फिरंग रोग, उपदंश
2.	गात्रस्पर्श (Body contact)	स्पर्शजन्य त्वक्‌शोथ, कृमियों के रोग, त्वक् और नेत्र अनूर्जता
3.	सहशैय्या (Sleeping together in the same bed)	विभिन्न त्वक् रोग
4.	सहभोजन (Eating together)	कामला, आन्त्रशोथ (Gastroenteritis Jaundice)
5.	निःश्वास (Inhalation)	राजयक्ष्मा, प्रतिश्याय, ज्वर
6.	वस्त्रमाल्यानुलेपनात् (Using the clothes and cosmetics of others)	त्वचा रोग, त्वचा अनूर्जता

पाठगत प्रश्न 1.1

(क) नीचे लिखे गए तथ्य सही है या गलत:

1. प्राकृतिक जीवन प्रक्रिया सदैव साम्यावस्था को वापस लाने का प्रयत्न करती है।

2. कर्मज व्याधि वर्तमान कर्मों का परिणाम है।
3. रोग के चार मुख्य कारण है।
4. विष एवं धनुर्वात रोग, रोग के प्राधानिक निदान के महत्त्वपूर्ण उदाहरण हैं।
5. आयुर्वेद में विभिन्न ज्वर, राजयक्ष्मा, एवं अभिष्यन्द सामान्य औपसर्गिक रोगों में वर्णित है।

(ख) रिक्त स्थान भरें:

1. वे रोग अदृश्य अनिष्टकर/अशुभ कारकों के कारण होते हैं ..... कहलाते हैं।
2. वे कारक जो ..... प्रकुपित कर एवं उसी क्षण ..... को उत्पन्न करते हैं ..... कहलाते हैं।
3. प्रज्ञापराध एक व्यक्ति की ..... और शरीर के ..... कार्यों से संबंधित होता है।
4. जीवित प्राणी और ब्रह्माण्ड या वातावरण के बीच समानता ..... कहलाता है।
5. पित्त प्रकोप ..... ऋतु में होता है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने आयुर्वेद में रोगी की अवधारणा के बारे में तथा आयुर्वेद में रोगों का वर्गीकरण एवं इनके कारणों का अध्ययन किया। हम जानते हैं कि आयुर्वेदिक संहिताओं में रोगों के कई वर्गीकरण वर्णित हैं। हमने यह भी जाना कि औपसर्गिक (infective) रोग क्या हैं। आयुर्वेद में औपसर्गिक रोगों की अवधारणा सुश्रुत संहिता में स्पष्टत: वर्णित है।

त्वचारोग, ज्वर के प्रकार, राजयक्ष्मा (Tuberculosis) और अभिष्यन्द (conjuctivitis) सामान्य औपसर्गिक रोग के रूप में वर्णित किये गये हैं। औपसर्गिक रोगों के नामों के अतिरिक्त औपसर्गिक रोगों के फैलने का माध्यम भी वर्णित है जैसे नीचे दिया गया है–

- प्रसङ्ग– मैथुनजन्य सम्पर्क (Sexual contact)
- गात्रस्पर्श– शरीर सम्पर्क से (Body contact)
- नि:श्वास– (श्वास में खींचना)(Inhalation)
- सहशैय्या– (एक साथ एक बिस्तर पर सोना) (Sleeping together in the same bed)
- सहभोजन– (एक साथ भोजन करना) (Eating together)
- वस्त्रमालयानुलेपनात्–(Using the clothes, towels and cosmetics of others)

पाठान्त प्रश्न

1. संक्षेप में रोग की अवधारणा तथा रोग के मुख्य कारणों का विस्तृत वर्णन करें।
2. आयुर्वेद में वर्णित सामान्य नैदानिक कारण क्या हैं?
3. प्रज्ञापराध क्या है? वर्णन करें एवं रोगों के वर्गीकरण पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
4. निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखें:
   (क) औपसर्गिक रोग (ख) आदि बल प्रवृत्ति
   (ग) निदानार्थकर रोग (घ) त्रयोरोग मार्ग

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

(क) सही एवं गलत:

1. सही 2. गलत 3. गलत 4. सही 5. सही

(ख) रिक्त स्थान भरें:

1. पैशाचकृत
2. दोष, विशिष्ट रोग, उभय हेतु
3. बुद्धिमत्ता, भाषण – विपरीत
4. लोकपुरुष साम्य
5. शरद्

10

रोग प्रक्रिया और सम्प्राप्ति के प्रकार

रोग की उत्पत्ति की आयुर्वेदिक संकल्पना विभिन्न निदानों के साथ बहुत जटिल है। आयुर्वेद में रोग एक अवस्था है, जिसमें शरीर और मन वेदना एवं अनेक प्रकार के दु:ख महसूस करता है। रोग शारीरिक दोषों जैसे- वात, पित्त और कफ एवं मानसिक दोष जैसे- रज और तम की अस्थिरता की देन है।

दोषों के गमन करने का तरीका और रोग की उत्पत्ति छ: अवस्थाओं के रूप में वर्णित है। इसको आयुर्वेद में क्रियाकाल के रूप में जानते हैं। यह चिकित्सा करने का उत्तम काल है। सम्प्राप्ति की प्रक्रिया के दौरान दोष-दूष्य के बीच प्रतिक्रिया दो प्रकार से होती है:-

1. **सामान्य सम्प्राप्ति** - यह एक विशेष रोग में दोष और दूष्य के बीच प्रतिक्रिया के तरीके को प्रदर्शित करती है।
2. **विशिष्ट सम्प्राप्ति**- यह रोग की प्रक्रिया को समझने के साथ-साथ सम्प्राप्ति के विभिन्न घटकों को प्रदर्शित करती है।

उद्देश्य-

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे:-

1. सम्प्राप्ति की परिभाषा और सम्प्राप्ति के आधारभूत विचारों को समझना;
2. रोग की छ: अवस्थाओं की व्याख्या;
3. दोष-दूष्य के बीच प्रतिक्रिया के तरीके की पहचान;
4. सम्प्राप्ति के प्रकारों को जानना।

10.1 सम्प्राप्ति के आधारभूत सिद्धांत

जब शरीर पर दोषों को अस्थिर करने वाले नैदानिक कारक काम करते हैं, तो दोष प्रकुपित

हो जाते हैं। कुछ शरीर स्रोतसों के माध्यम से सम्पूर्ण शरीर में फैल जाते हैं। अंततः ये कुछ विशेष अंग या तन्त्र की कोशिकीय संरचना को प्रभावित करते हैं और विशेष रोग के लक्षण और चिह्न उत्पन्न करते हैं, इस प्रकार के सम्बन्धों को आयुर्वेद में दोष-दूष्य सम्मूर्छना के रूप में जानते हैं।

यह सम्बन्ध चिकित्सकीय लक्षण के विशिष्ट भाग के उत्पन्न होने के लिए जिम्मेदार है जो प्रकुपित दोष, प्रकुपित दूष्य और अधिष्ठान के संयुक्त रूप में जानी जाती है। यह रोगों की उत्पत्ति चक्र की प्रक्रिया सम्प्राप्ति रूप में जानी जाती है। यह रोगों के चिकित्सकीय एवं सह चिकित्सकीय दोनों अवस्था में शरीरिक बदलाव का अध्ययन करती है जैसे कि-

निदान-(Causes), सम्प्राप्ति (pathogenesis), पूर्वरूप (appearance of Prodomal features), और रूप- रोग के मुख्य लक्षण और चिह्न की उत्पत्ति (sign and symptoms)।

क्रियाकाल की अवधारणा, रोग विज्ञान की प्रगति के पूर्वानुमान का एकमात्र मार्ग प्रस्तुत करता है, जो परिवर्तनीय पूर्व चिकित्सा अवस्था से स्पष्ट चिकित्सा अवस्था तक तथा इसके अतिरिक्त, अपरिवर्तनीय स्वभाव की जटिलताओं के साथ रोग की वृद्धि को बतलाता है। क्रियाकाल कल्पना के पीछे मूलभूत दर्शन यह है कि शीघ्र रोग निर्णय के लिए और उचित समय पर उपयुक्त चिकित्सा व्यवधान के द्वारा रोग प्रक्रिया को विपरीत करना है।

रोग क्रियाकाल की छः अवस्थाओं के स्वरूप निम्न प्रकार हैं-

1. संचय - स्वस्थान में दोषों का एकत्रित होना।
2. प्रकोप - स्वस्थान में दोषों का कुपित होना।
3. प्रसर - प्रकुपित दोषों का स्वस्थान से शरीर स्रोतों के माध्यम से दूरगामी स्थान पर प्रसरण।
4. स्थान संश्रय- कुपित दोषों का विकृत स्थान पर रूकना।
5. व्यक्ति - रोग लक्षण उत्पत्ति।
6. भेद- तत्पश्चात रोग की विकसित अवस्था और उसके उपद्रव की उत्पत्ति।

10.2 सम्प्राप्ति के प्रकार-

'सम्प्राप्ति' शब्द रोग उत्पत्ति के तथ्य से सम्बन्धित है। दोष के दूषण और प्रकोपण के द्वारा दोष प्रकुपित होते हैं, जिसका स्वरूप और तरीका नैदानिक कारकों के अनुसार विशेष दोष प्रकोप के लिए जिम्मेदार हो सकता है।

इसके पश्चात, ये खराब कोशिकाओं या तंत्रों या अंगों के साथ परस्पर क्रिया करके और रोग को प्रेरित कर सकते हैं। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया सम्प्राप्ति के रूप में जानी जाती है। यह दो प्रकार के होते हैं:

1. सामान्य सम्प्राप्ति-

यह ऊपर वर्णित रोग स्पष्टता की छः अवस्थाओं को दर्शाता है। रोग के विशिष्ट (सामान्य) लक्षण दोष-दूष्य के सम्बन्धों के अनुसार होते हैं। सामान्यतः दोष और दूष्य का सम्बन्ध दो प्रकार का होता है-

(i) **प्रकृति समसमवेत सम्बन्ध**-कम तीव्र होता है और इसलिए इसका निदान आसानी से किया जा सकता है वात, पित्त, कफ और इनके संयोग से उत्पन्न रोग हैं।

(ii) **विकृति विषम समवेत-विषम सम्बन्ध**- दोष और दूष्य का संयोग अधिक तीव्र होता है। इसलिए व्यक्तिगत दोष और दूष्य के अनुसार रोग आसानी से पहचान में नहीं आता है। तब इसे एक नये चिकित्सकीय या अंग आधारित नाम के रूप में वर्गीकृत किया जाता है।

2. विशिष्ट सम्प्राप्ति-

सही निदान के लिए रोग प्रक्रिया के क्रम को समझकर और सम्प्राप्ति के घटकों को पहचानकर चिकित्सा करनी चाहिए। चरक संहिता में विशिष्ट सम्प्राप्ति के छः पहलुओं की परीक्षा का निर्देश किया है। जैसे-

1. संख्या सम्प्राप्ति।
2. विकल्प सम्प्राप्ति।
3. प्रधान्य सम्प्राप्ति।
4. बल सम्प्राप्ति।
5. काल सम्प्राप्ति।
6. विधि सम्प्राप्ति।

1. **संख्या सम्प्राप्ति**- यथा रोगों के भेद और प्रकार- इस अवस्था में दोषों के आधार पर रोगों के प्रकारों को वर्गीकृत किया जाता है। इसलिए, दोषों के आकलन द्वारा रोगों के भेद का निर्धारण किया जा सकता है।

2. **विकल्प सम्प्राप्ति**- यथा- रोग के दोषिक विकल्प का विचार- दोषों के विभिन्न गुण होते हैं। इसलिए, आवश्यक है कि दोषों के प्रकुपित होने की प्रकृति की पहचान इनके गुणों के रूप में सही विशेष चिकित्सा विवरणीय लिखने के लिए किया जाता है।

3. **प्रधान्य सम्प्राप्ति**- यथा- दोष की प्राथमिक और द्वितीयक प्रकृति- सामान्यतः रोगों की सम्प्राप्ति में एक से ज्यादा दोषों की सहभागिता होती है। इनमें से एक प्रधान रूप में होता है और अन्य कम और अल्प प्रधान्य हो सकते हैं। इस वातावरण में अगर प्रथम और प्रधान की चिकित्सा की जाये तो दूसरे दोष अपने आप शांत हो जाते हैं।

4. **बल सम्प्राप्ति**-रोग की गम्भीरता-कुछ समय पर रोग गम्भीर होता है जबकि अन्य समय

पर यह अल्प गंभीर हो सकता है। यह बल सम्प्राप्ति के रूप में जाना जाता है। बल (गंभीरता या तीव्रता) नैदानिक कारकों की मात्रा से सीधे समानुपात में होती है।

5. **काल सम्प्राप्ति**-यथा: रोगों का काल से सम्बन्ध– ऋतुकाल, अन्नकाल और आयु के सम्बंन्ध में दोषों का प्रकुपित होना काल सम्प्राप्ति के रूप में जाना जाता है।

6. **विधि सम्प्राप्ति**- यथा: सह-वर्गीकरण– रोग ज्ञान और निदान के आधार पर अनेक सहवर्गीकरण विधि सम्प्राप्ति कहलाता है।

पाठगत प्रश्न 10.1

सही उत्तर का चयन करें:

1. दोष के प्रकुपित होने से लेकर रोग उत्पत्ति तक की आन्तरिक प्रक्रिया कहलाती है।-

   (क) व्याधि (ख) सम्प्राप्ति

   (ग) क्रियाकाल (घ) प्रसर

2. क्रियाकाल.....प्रकार के होते हैं।

   (क) 6 (ख) 3

   (ग) 7 (घ) 8

3. नैदानिक कारकों की मात्रा का निर्धारण किसके द्वारा होता है?

   (क) विधि सम्प्राप्ति (ख) काल सम्प्राप्ति

   (ग) बल सम्प्राप्ति (घ) विकल्प सम्प्राप्ति

4. रोगोत्पत्ति की प्रक्रिया में दोष-दूष्य अपनी पहचान खो देते हैं। इसे क्या कहते है?

   (क) संख्या सम्प्राप्ति (ख) प्रधान्य सम्प्राप्ति

   (ग) विकृत विषम समवेत सम्प्राप्ति (घ) काल सम्प्राप्ति

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने आयुर्वेद में रोग के विकास के बारे में अध्ययन किया। किस क्रम से दोषिक लय विचलित होता है और यह छः विभिन्न अवस्थाओं में गमन करता है। इसके अतिरिक्त, हमने दोष और दूष्य के पारस्परिक क्रिया के तरीके के बारे में भी अध्ययन किया। रोग की उत्पत्ति की प्रक्रिया के दौरान विभिन्न प्रकार की सम्प्राप्ति के साथ-साथ रोगों के विभिन्न घटक जैसे-दोष और दूष्य की सहभागिता, रोग का अधिष्ठान, रोग के प्रकार इत्यादि का भी ज्ञान प्राप्त किया।

पाठांत प्रश्न

1. सम्प्राप्ति को परिभाषित करें और इसके भेदों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।
2. रोग की छः अवस्थाएं क्या हैं?
3. विशिष्ट सम्प्राप्ति का विस्तार से वर्णन करें।
4. निम्नलिखित के ऊपर संक्षिप्त टिप्पणी लिखें।

   (क) सामान्य सम्प्राप्ति (ख) विधि सम्प्राप्ति (ग) विकल्प सम्प्राप्ति (घ)बल सम्प्राप्ति

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

(1) ख (2) क (3) क (4) ग

पाद टिप्पणी (Foot Notes)

निदान - रोगों के कारण

सम्प्राप्ति- दोष के प्रकोपित होने से लेकर रोग की लक्षणोत्पत्ति तक की रोग की प्रक्रिया।

पूर्वरूप - वास्तविक रोग के लक्षण उत्पत्ति के पूर्व संस्थान में बदलाव प्रतीत होना।

11

रोग एवं रोगी की परीक्षा

आयुर्वेदीय चिकित्सक रक्तचाप को मापने के लिए स्फिग्मो-मैनोमीटर (रक्तचाप-मापक यंत्र) और हृदय, फुप्फुस एवं आमाशय-आन्त्र नलिका की ध्वनि सुनने के लिए स्टेथोस्कोप का प्रयोग नहीं करते क्योंकि आयुर्वेद में स्वास्थ्य के सभी घटकों और रोगों की जांच करने के लिए रोग परीक्षा विधि और रोग ज्ञान की विधि बहुत वैज्ञानिक है। वास्तव में, आयुर्वेद में रोग ज्ञान के उपाय आज की चिकित्सा विज्ञान की अपेक्षा बहुत विस्तृत और बहुत स्पष्ट हैं। आयुर्वेदीय संहिताओं में रोगों के ज्ञान के लिए विभिन्न विधियां वर्णित हैं, जैसे–अष्टविध परीक्षा, तथा रोगी परीक्षा के लिए–दशविध परीक्षा।

उद्देश्य–

इस अध्याय का अध्ययन करने के पश्चात हम जानेंगे-

1. रोगों की परीक्षा की विधि और स्थान को समझना;
2. रोगी परीक्षा विधि और स्थान को समझना;
3. रोगी के स्वास्थ्य का पुनर्परीक्षण;
4. रोग के बल और रोग का शरीर पर अवांक्षित प्रभाव का पुर्नमुल्यांकन;
5. विभिन्न ऋतुओं और विभिन्न आयुवर्ग में रोग की पहचान।

11.1 सामान्य अवधारणा

औषधि(drugs), को विज्ञान और कला(युक्ति) के संयोग के रूप में जाना जाता है। यह चिकित्सकीय रोग ज्ञान के क्षेत्र में सत्यतम है। चिकित्सक को सर्वप्रथम रोगी का आत्मविश्वास जीतने का प्रयास करना चाहिए। चिकित्सक जब तब इसमें सफल नहीं होगा तब तक रोगी अपनी व्यक्तिगत परेशानियां और अपने विचार प्रकट नहीं करेगा जो कि रोग प्रक्रिया से सीधे संबंधित हो सकते हैं।

ऐसा ज्यादातर मनोदैहिक और मानसिक विकारों में देखा जाता है। आचार्य चरक ने इस पर

प्रकाश डाला है कि अगर एक चिकित्सक अपने ज्ञान के कारण अपने रोगी के मस्तिष्क में प्रवेश नहीं कर सकता है तो वह रोगी की सफल चिकित्सा नहीं कर सकता है।

आदर्श तरीके से चिकित्सकीय परीक्षा के समय, उपयुक्त बातचीत और सही चिकित्सकीय परीक्षा से आत्मविश्वास को जीत सकते हैं जो कि विज्ञान की अपेक्षा एक कला (युक्ति) है।

11.2 रोग और रोगी परीक्षण का उद्देश्य

आयुर्वेद में चिकित्सकीय परीक्षण के विषय दो प्रकार के हैं:

(i) रोगी के बल का आकलन करना।

(ii) रोग के बल और प्रकृति का आकलन करना।

3.3 चिकित्सकीय परीक्षण की विधियां

रोग परीक्षा (Examination of Disease)

द्विविध परीक्षा	त्रिविध परीक्षा	चतुर्विध परीक्षा	पञ्चविधपरीक्षा	षडविध परीक्षा
प्रत्यक्ष (Direct Perception)	आप्तोपदेश (Verbel or Textual testimony)	आप्तोपदेश (Verbel or Textual testimony)	निदान (Etiology)	निदान (Etiology)
अनुमान (Inference)	प्रत्यक्ष (direct perception)	प्रत्यक्ष (direct perception)	पूर्वरूप (prodromal symptom)	पूर्वरूप (Prodromal symptom)
	अनुमान (Inference)	अनुमान (Inference)	रुप (clinical feature)	रूप (clinical feature)
		युक्ति (Reasoning and method)	उपशय (Compatibility)	उपशय (Compatibility)
			सम्प्राप्ति (Pathogenesis)	सम्प्राप्ति (Pathogenesis)
				प्रश्न (Interrogation)

चित्र: 11.1 रोगी परीक्षण एवं चिकित्सा

प्रत्यक्ष (Direct perception)–चिकित्सक द्वारा अपनी ज्ञानेन्द्रियों और मन द्वारा प्राप्त ज्ञान।

अनुमान (Inference)–रोगी के विभिन्न लक्षणों के अनुसार ज्ञान।

आप्तोपदेश (Verbal or Textual)–विद्वानों के मौखिक और लिखित वक्तव्य और रोगी के कथन एवं उसके बारे में अनुभव।

युक्ति (Reasoning and method)–तर्क शक्ति और अतिरिक्त जांच विधियाँ।

निदान (Etiology)–रोग का कारण।

पूर्वरूप (Prodomal symptom)–रोगों के लक्षणोत्पत्ति के पूर्व तंत्र (अधिस्थान) में अन्य बदलाव की उत्पत्ति।

रूप (Clinical feature)–उत्पन्न व्याधि के बोधक लक्षणों को रूप कहते हैं।

उपशय (Compatibility)–रोग ज्ञान अवस्था में सहायक।

सम्प्राप्ति (Pathogenesis)–दोष प्रकोप से लेकर रोग के लक्षण उत्पन्न होने तक की प्रक्रिया।

प्रश्न (Interrogation)–रोगी से उसके रोग के बारे में प्रश्न पूछना।

रोगीपरीक्षा (Examination of Patient)

अष्टविध परीक्षा	दशविद्य परीक्षा
नाड़ी – Pulse examination	प्रकृति – Constitution
मल – Stool examination	विकृति – Disease susceptibility
मूत्र – Urine examination	सार – Tissue quality
जिह्वा – Examination of Tounge	संहनन – Body compactness
शब्द – Examination of voice and speech	*प्रमाण – anthropometry
स्पर्श – Examination through touch	सात्म्य – adaptability
दृक् – Examination of eye	सत्व – Mental stamina
आकृति – Examination of face and body structure	आहार शक्ति – Digestive power
	व्यायाम शक्ति – Strength of body
	वय – Age

***प्रमाण**–अपनी अंगुली की चौड़ाई से संपूर्ण शरीर के अंगों का माप

पाठांत प्रश्न

रिक्त स्थान भरें:-

1. रोगी परीक्षा का उद्देश्य रोगी के ..... का आकलन करना है।
2. आप्तोपदेश ..... विद्वानों के विचार और रोगी का अनुभव है।
3. सात्म्य ..... है।
4. आहार शक्ति शरीर की ..... है
5. प्रमाण अपने अङ्गुली की चौड़ाई से ..... अध्ययन है।

आपने क्या सीखा

इस अध्याय में हमने रोग और रोगी परीक्षा की सामान्य अवधारणा के बारे में अध्ययन किया और इसके अतिरिक्त, आयुर्वेदीय संहिताओं में वर्णित इनके परीक्षण की स्थिति और स्थान का अध्ययन भी किया। इसके अतिरिक्त, इससे विभिन्न रोगी परीक्षा के विषय को समझने में भी सहायता मिली।

पाठांत प्रश्न

1. आयुर्वेद में चिकित्सकीय परीक्षा की विधियों का वर्णन करें।

2. अष्टविध परीक्षा पर टिप्पणी लिखें।
3. परीक्षा के स्थान लिखें और अनुमान प्रमाण का विस्तार से वर्णन करें।
4. रोगी में दशविध परीक्षा को विस्तार में लिखें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

1. बल।
2. मौखिक एवं लिखित उपदेश।
3. ग्रहण क्षमता।
4. पाचन शक्ति।
5. सम्पूर्ण शरीर के अंगों की माप का।